



साधना पथ



॥ ॐ ॥

श्री श्री चैतन्य महाप्रभु
एवं
श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी प्रदर्शित

साधना पथ



स्वामी आलोकानंद सरस्वती
स्वामी अमलानंद सरस्वती

श्री श्री विजयकृष्ण भक्त संघ
पोस्ट - रघुनाथपुर
जिला - पुरुलिया
पश्चिम बंगाल
पिन कोड - ७२३१३३

साधना पथ

प्रथम संस्करण : फाल्गुन पूर्णिमा संवत् २०४२

२६ मार्च, १९८६ ई.

द्वितीय संस्करण : गुरुपूर्णिमा संवत् २०५१

२२ जुलाई, १९९४

प्रकाशक

श्री श्री विजयकृष्ण भक्त संघ

पोस्ट - रघुनाथपुर

जिला - पुरुलिया (पश्चिम बंगाल) .



प्रचार सामग्री

सहयोग राशि - बीस रुपये

श्री श्री चैतन्य महाप्रभु एवम् श्री श्री गोस्वामी जी का प्रकाशित चित्र
श्री श्री विजयकृष्ण साधन आश्रम (पोस्ट : नरेंद्रपुर, जिला : २४-परगना, पश्चिम बंगाल)
के सौजन्य से प्राप्त हुआ।

लेखक का निवेदन

श्री श्री चैतन्य महाप्रभु तथा प्रसिद्ध संत श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी का नाम भारतवर्ष के प्रायः सभी भक्तजनों ने सुना होगा। इस ग्रंथ में श्री श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी का संक्षिप्त परिचय एवं उनके कुछ उपदेशों का संग्रह प्रकाशित किया जा रहा है। षष्ठ अध्याय में श्री श्री गीताजी का एकादश अध्याय एवं कुछ भजनों का संग्रह किया गया है।

महात्माओं का हृदय नवनीत के समान कोमल होता है। साधारण जीवों की दुर्दशा देख कर उनका कोमल हृदय व्याकुल हो उठता है। आज से छः सौ वर्ष पूर्व मानव जीवन अशांतिमय बन गया था। पाप और अधर्म के प्रभाव से तथा मोह एवं अज्ञानवश मानव हिताहित ज्ञानशून्य हो सत्य, शिव एवं सुंदर की उपासना भूल गया। उस समय शांतिपुर (जिला-नदिया, पश्चिम बंगाल) में महान तपस्वी श्री अद्वैताचार्य दिन-रात तुलसी और गंगाजल से अपने ईष्ट श्रीकृष्ण भगवान के अवतीर्ण होने के लिए व्याकुल भाव से प्रार्थना करने लगे। भगवान श्री गीताजी में कहते हैं

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

धर्म की स्थापना के लिए वे स्वयं आते हैं एवं अपने साथ अवतार कल्प महात्माओं को लाते हैं। सिद्ध वैष्णव महात्माओं का मत है कि भगवान श्रीकृष्ण ही श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में बंगाल में अवतीर्ण हुए। उनके प्रधान लीला सहचर रूप में श्री नित्यानंद, श्री हरिदास, पण्डित गंदाधर, आचार्य श्रीवास, राय रामानंद, सनातन एवं रूप गोस्वामी आदि असंख्य पार्षद अवतीर्ण हुए।

उसी समय के आस-पास भारतवर्ष में गुरुनानकदेव जी, गोस्वामी तुलसीदास जी, मीराबाई, स्वामी हरिदास जी, संत तुकाराम, श्री नरसी मेहता, श्री वल्लभाचार्य आदि ईश्वर प्रेरित महामानव अवतीर्ण हुए। इन सब के प्रभाव से लुप्त प्राय भक्ति मार्ग फिर से प्रकट हुआ।

महाप्रभु के अवतीर्ण होने के तीन सौ वर्ष बाद उसी प्रकार के अशांतिमय वातावरण में श्री रामकृष्ण परमहंस, श्री तैलंग स्वामी जी, श्री भोलानंद गिरि, श्री गंभीरनाथ जी, श्री

रामदास काठिया बाबा, श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी आदि असंख्य महात्मा अवतीर्ण हुए। धर्म प्रचार में इन महात्माओं का अपना-अपना विशिष्ट कर्मक्षेत्र था।

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रदर्शित मार्ग, काल प्रभाव से कुछ लुप्त-सा हो रहा था। उस समय महाप्रभु द्वारा प्रचारित वैष्णव धर्म के पुनर्जागरण में श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी का विशेष अवदान था। श्री चैतन्य महाप्रभु के दुर्लभ प्रेम को साधारण लोगों के लिए सुलभ कराने का श्रेय श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी को है। इन्होंने सद्गुरु के रूप में शक्ति संचार युक्त भगवत् नाम का वितरण किया।

ग्रंथ के प्रारंभ में “शुभ-सूचना” विश्वभारती (शांति-निकेतन) के हिंदी भवन के प्रसिद्ध विद्वान प्रोफेसर रामसिंह तोमर ने लिखी है। आपने ग्रंथ को पढ़ कर एवं उपयोगी सुझाव देकर इसे सुंदर बनाने में यथेष्ट सहयोग दिया है।

हिंदी भाषा में ‘साधना पथ’ ग्रंथ सर्वप्रथम श्री श्री चैतन्य महाप्रभु की जन्म पंचशत् वार्षिकी में प्रकाशित किया गया था। थोड़े ही दिनों में बंगला भाषी माठकों के आग्रह को देख कर इस ग्रंथ को बंगला भाषा में अनुवाद कर प्रकाशित किया गया। हिंदी ‘साधना पथ’ ग्रंथ का यह द्वितीय संस्करण है। ग्रंथ के द्वितीय संस्करण में कुछ नये भजनों तथा संस्कृत के स्तोत्रों को संयोजित किया गया है। आशा है पहले संस्करण की तरह द्वितीय संस्करण भी भक्त समाज में समानित होगा।

ग्रंथ के पुनर्मुद्रण कार्य में श्री श्री विजयकृष्ण भक्त संघ के सदस्यों ने तन-मन-धन से सहयोग दिया है। श्री श्री गोस्वामी जी के चरणों में सभी की मंगल प्रार्थना करता हूँ।

धन्यवाद।



शुभ सूचना

(प्रथम संस्करण की भूमिका)

श्री चैतन्य महाप्रभु की पंचशत् वार्षिकी इस वर्ष १९८६ ई. में मनाई जा रही है। हिंदी प्रदेश में इस उपलक्ष्य में कहीं किसी उत्सव का आयोजन किया जा रहा हो, ऐसा समाचार मेरे देखने में नहीं आया। उत्तरी भारत की संस्कृति और साहित्य में चैतन्य महाप्रभु और उनके अनुयायियों का जो योगदान रहा है उसके महत्व को सभी सुसंस्कृत व्यक्ति जानते हैं। मध्य युग के साधकों में चैतन्य महाप्रभु और महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उत्तरी भारत के कवियों और कलाकारों को अभूतपूर्व मात्रा में प्रभावित किया है। भारतीय भक्तिधारा में मध्ययुग के जिन आचार्यों और साधकों ने एक नया मोड़ दिया, संभव है, वह परंपरा से चली आती हुई भक्तिधारा का स्वाभाविक विकास हो। संभव है, ऐतिहासिक और सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप इस युग के महापुरुषों ने परंपरा के साथ नवीनता का सामंजस्य किया हो। भक्ति और साधना के क्षेत्र में यह नया दृष्टिकोण है “हरिनाम स्मरण का”। श्री चैतन्य महाप्रभु, कवीर, नानक, तुलसीदास सभी ईश्वर के नाम स्मरण को भक्ति का सबसे प्रधान अंग मानते हैं। चैतन्य महाप्रभु ने ‘हरे कृष्ण....., हरे राम’ स्मरण कीर्तन को कलिकाल में एकमात्र साधन बताया है। उसी स्वर में तुलसीदासजी ने “कलियुग केवल नाम अधारा” कहा है। उत्तरी भारत के मध्य युग में सभी भाषाओं में भक्तों और संतों की रचनाओं में भगवत् स्मरण कीर्तन का सबसे अधिक कथन हुआ है। नाना प्रकार से उसी के महत्व को प्रतिपादित किया गया है। यदि इस मूल स्वर को उस साहित्य से अलग कर दें तो उस काल का अप्रतिम साहित्य रसहीन हो जाएगा।

नाम स्मरण या नाम जप को लेकर जिस साहित्य की रचना हुई उसके साथ संगीत का अद्भुत मेल है। शब्द और संगीत के अपूर्व समन्वय की परंपरा का जगमगाता रत्न जयदेव का ‘गीतगोविंद’ है। लगता है, अपने प्राचीन और भविष्य के कवि भक्त या भक्त कवियों के काव्यप्रासाद की देहरी का दीपक है। मध्ययुग का कोई ऐसा कवि नहीं हुआ जिसने संगीत प्रधान भक्ति काव्य न लिखा हो। चैतन्य महाप्रभु ने अपने कीर्तन द्वारा संगीत को बहुत ऊंचा उठा दिया, उसे दिव्य स्थान पर आसीन कर दिया। भाव-विभोर होकर जिस प्रकार महाप्रभु अपने शिष्यों सहित नाम-कीर्तन करते थे, उसके माधुर्य, सौंदर्य, भव्यता की कल्पना कर के मन भक्ति और श्रद्धा से भर जाता है।

हमारे देश में वह परंपरा जीवित है। जिस प्रकार चैतन्य महाप्रभु ने नाम-जप संकीर्तन को पुनः प्रतिष्ठित किया, संभव है उसी से प्रभावित होकर महाप्रभु बल्लभाचार्य ने श्रीनाथजी की उपासना में कीर्तन का प्रचलन किया और उस महत्वपूर्ण स्थान का भार भक्त प्रवर सूरदास को सौंपा। सूरदास जी का 'सूरसागर' भजन-कीर्तन एवं संगीत का अद्भुत सागर है।

बंगाल में चैतन्य महाप्रभु की परंपरा अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। इस परंपरा में एक से बढ़ कर एक भक्त, कवि, साधक और लोकोत्तर व्यक्ति हुए हैं। इसका परिचय देने वाले अनेक ग्रंथ बंगला भाषा में उपलब्ध हैं। नवद्वीप पूर्वी भारत में विद्या और विद्वानों के लिए उसी प्रकार ख्याति संपन्न रहा है जिस प्रकार काशी। चैतन्य महाप्रभु के समकालीन जो अनेक प्रसिद्ध भक्त शांतिपुर नगर में थे, उनमें प्रधान भक्त अद्वैताचार्य थे। उनके वंश में दसवीं पीढ़ी में उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में एक भक्त विद्वान महापुरुष श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी का जन्म हुआ। समस्त विश्व के इतिहास में उन्नीसवीं शती का नाना दृष्टियों से उल्लेखनीय महत्व है। इस शती में संसार के प्रायः सभी उन्नत देशों में आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य करने वाले, इतिहास के पृष्ठों पर अपनी अमिट छाप छोड़ने वाले अनेक महापुरुष हुए हैं। हमारे देश में सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टि से अनेक उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, परमहंस, रामकृष्ण देव, विवेकानंद, विजयकृष्ण गोस्वामी, दयानंद सरस्वती, महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और भारतेन्दु हरिश्चंद्र आदि ऐसे कई महापुरुषों ने प्रत्येक प्रांत में जन्म लिया, जिनके महान कार्यों के फलस्वरूप हमारे देश में सभी क्षेत्रों में पुनर्जागरण हुआ। भक्ति और साधना के क्षेत्र में चैतन्य महाप्रभु की परंपरा में श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी का जन्म सन् १८४१ ई. में हुआ। आधुनिक भारतीय नवजागरण के वे विशिष्ट महापुरुष हैं। ब्राह्म समाज और गौड़ीय वैष्णव मत दोनों ही संप्रदायों में उनका स्थान शीर्ष पुरुष का रहा।

हिंदी भाषा में उनके विषय में बहुत ही कम लिखा गया है। वास्तव में उन्नीसवीं शती पर अभी अच्छा कार्य हुआ नहीं है। योरोप के देशों में भी उन्नीसवीं शती में महत्वपूर्ण परिवर्तन, उत्थान-पतन हुए और कई देशों में इस शती के नाना पक्षों को लेकर प्रशंसनीय कार्य हुआ है। हमारे यहां इस दिशा में अब प्रयत्न हो रहे हैं। श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी का जीवन और कार्य उस शती के महत्व को आलोकित करने में सहायक होंगे, इसलिए मैं इस कृति "श्री श्री चैतन्य महाप्रभु एवं श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी प्रदर्शित साधना पथ" को विशेष महत्वपूर्ण समझता हूं। इस संक्षिप्त विवरण को पढ़ कर सहृदय पाठकों के मन में और अधिक जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होगी। उससे उत्साहित होकर विस्तृत ग्रंथ लिखने की प्रेरणा विद्वानों को मिलेगी।

कृति के लेखक स्वामी श्री आलोकानंद जी सरस्वती और स्वामी श्री अमलानंद जी सरस्वती हैं। यह उल्लेखनीय है कि भ्रातृ द्वय उच्च शिक्षा प्राप्त महात्मा हैं। इनके छोटे भाई भी संन्यास पथ पर हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त कर के संन्यास लेने की कल्पना भी एक युग विरोधी बात लगती है। ये हर समय ईश्वर के ध्यान, मनन एवं कीर्तन प्रचार में लगे रहते हैं। वंश परंपरा से इनको यह सिद्ध मार्ग प्राप्त हुआ है। इनके पिताजी के गुरुदेव श्री श्री स्वामी प्रेमानंद भारती जी विदेशों में भक्ति मार्ग का प्रचार किया करते थे और पूज्या माताजी योगीराज श्री श्री विशुद्धानंद परमहंस की शिष्या तथा महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज की गुरु भगिनी हैं। इनके गुरुदेव, श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी की परंपरा के प्रसिद्ध महात्मा श्री श्री स्वामी असीमानंद जी सरस्वती हैं। इनकी मातृभाषा बंगला है। रायपुर (म.प्र.) जन्म स्थान है। पश्चिम बंगाल के जिला पुरुलिया के रघुनाथपुर नामक स्थान में “श्री श्री विजयकृष्ण भक्त संघ” में विराजते हैं।

हिंदी क्षेत्र में चैतन्य महाप्रभु की पंचशत् जन्म वार्षिकी के उपलक्ष्य में अगर कोई आयोजन हुआ तो इस लघु आकार कृति को मैं उसकी शुभ सूचना देने वाली समझूंगा। पुस्तक मैंने पढ़ी और पढ़ कर आनंद का अनुभव हुआ। सुसंस्कृत समाज में इसका आदर होगा।

प्रो. रामसिंह तोमर

हिंदी भवन

१६-५-८५

विश्वभारती, शांतिनिकेतन



सूची-पत्र

विषय	पृष्ठ
प्रथम अध्याय	
श्री श्री चैतन्य महाप्रभु का संक्षिप्त परिचय	१
द्वितीय अध्याय	
नाम संकीर्तन की महिमा, कैवल्यष्टकम् तथा श्री श्री चैतन्य महाप्रभु कृत शिक्षाष्टक श्लोकों का भावार्थ	१६
तृतीय अध्याय	
श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी का संक्षिप्त परिचय	२७
चतुर्थ अध्याय	
श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी के उपदेशों का संग्रह	४३
पंचम अध्याय	
अदीक्षित व्यक्तियों के लिए साधना-संकेत	५३
षष्ठ अध्याय-	
श्री श्री गीताजी का एकादश अध्याय एवं भजनों का संग्रह	
(क) प्रातः वंदना	५६
(ख) श्रीमद्भगवद्गीता एकादश अध्याय	६०
(ग) विश्वरूप दर्शन भावार्थ	६६

भजन-संग्रह

प्रातःकाल गाए जाने वाले भजन

(१) हरे मुरारे	७१
(२) उधो मोहि संत सदा अति प्यारे	७१
(३) वृंदा विपिने मंगल	७२

विषय	पृष्ठ
(४) जय राधे, जय राधे गोविंद	७३
(५) भज गौराङ्ग कह गौराङ्ग	७४
(६) जागिये ब्रज राज कुँवर	७६
(७) भजहुं 'रे' मन	७७
(८) नारायण का भजन	७७
(९) काहे रे वन खोजन	७८
(१०) यही राम भजन के	७८
(११) रे मन, कृष्ण नाम	७९
(१२) देवाधिदेव गौरचंद्र	७९
(१३) नामसंकीर्तन (प्रभाती)	८०

संध्याकालीन गाए जाने वाले भजन

(१४) संध्या वंदना (क)	८१
संध्या वंदना (ख)	८१
(१५) भवसागर तारण	८२
(१६) ठाकुर ऐसा ही	८३
(१७) हरदम लेना अपने	८४
(१८) गुरुदेव माता	८४
(१९) गुरु कृपान्जन पाओ	८५
(२०) ऐसी करी गुरुदेव दया	८५
(२१) ॐ प्रलय पयोधिजले	८६
(२२) प्रभु मीशमनीशमशेषगुणं	८८
(२३) जय शंखगदाधर नील	८९
(२४) केशव कृष्ण अनंत विलास	९१

विषय	पृष्ठ
(२५) अधरं मधुरं वदनं मधुरम्	६१
(२६) श्री रामचंद्र स्तुति:	६२
(२७) श्री रुद्राष्टकम्	६३
(२८) भवान्यष्टकम्	६५
(२९) श्री जगन्नाथ दशकम्	६६
(३०) श्री चैतन्य महाप्रभु अष्टकम्	६८
(३१) देवि सूरेश्वरि भगवति	१००
(३२) तू ही भक्त सखा	१००
(३३) ॐ जय जगदीश हरे	१०१
(३४) श्री रामचंद्र कृपालु	१०१
(३५) हरि से लागि रहो रे भाई	१०२
(३६) सुंदर लाला नंद दुलाला	१०२
(३७) मनुआ भज ले सीताराम	१०३
(३८) तू दयालु दीन हौं	१०३
(३९) हरिनाम सुमर सुखधाम	१०४
(४०) हरि दीनदयाल दया करके	१०४
(४१) जटिया बाबा हो	१०५
(४२) जय दुर्गे दुर्गति परिहारिणी	१०८
(४३) हे गोविंद राखो शरण	१०८
(४४) तुमकि चलत रामचंद्र	१०९
(४५) जिनके हृदि में श्रीराम बसे	१०९
(४६) दे दर्शन भगवान	१०९
(४७) राम राम गाओ संतो	११०
(४८) रघुवर तुमको मेरी लाज	११०
(४९) मंगल मूरति मारुतनंदन	१११

विषय	पृष्ठ
(५०) बीत गये दिन भजन बिना रे	१११
(५१) चरण कमल बन्दौ हरि राई	११२
(५२) सोई रसना जो हरि गुन	११२
(५३) प्रभु मेरो अवगुण चित	११३
(५४) सीता पति रामचंद्र	११३
(५५) सुंदर रघुवर	११४
(५६) बंधुगणों मिल कहो प्रेम से	११४
(५७) नाचे और हरि बोले	११५
(५८) चाई आनंद चाई प्रेम	११७
(५९) भजो मन राम चरण सुखदायी	११७
(६०) प्रेम मुदित मन से कहो	११८
(६१) भज राधेकृष्ण गोविंदम्	११९
(६२) सद्गुरु की आरति	१२०
(६३) अब नाम सुमिर लो प्यारे	१२१
(६४) हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः	१२१
(६५) श्री नाम संकीर्तन (संध्याकालीन)	१२२
(६६) समाप्ति वंदना	१२३
(६७) जयध्वनि	१२४





प्रथम अध्याय

श्री कृष्ण-चैतन्य महाप्रभु का संक्षिप्त परिचय

श्री श्री चैतन्य महाप्रभु सन् १४८६ ई. में पवित्र फाल्गुन पूर्णिमा (होली) के दिन पश्चिम बंगाल स्थित 'नवद्वीप' में अवतीर्ण हुए। नवद्वीप के प्रसिद्ध पंडित श्री जगन्नाथ मिश्र का गृह इस नवजातक के आविर्भाव से आलोकित हो उठा। माता शची देवी के पिता अपने समय के प्रसिद्ध ज्योतिषी माने जाते थे। उन्होंने आकर गणना की और इस जातक की अपूर्व जन्म कुंडली देख कर आश्चर्यचकित हो कहने लगे— “यह जातक असामान्य विद्या का अधिकारी होगा। इसका धर्मजगत में अपना विशिष्ट स्थान रहेगा। अपने अलौकिक जीवन के प्रभाव से यह जगत्पूज्य होगा।” इसे सुन कर लोग माता शची देवी तथा पिता जगन्नाथ मिश्र के भाग्य की प्रशंसा करने लगे। यही शिशु भविष्य में बंगाल में गौराङ्ग महाप्रभु के नाम से तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के नाम से जगत्पूज्य हुआ। मधुर रूप, मधुर प्रेम एवं मधुर करुणा के कारण त्रिताप ज्वाला से त्रस्त नर-नारी इन्हें ईश्वर के समान मानने लगे।

श्री जगन्नाथ मिश्र के प्रथम पुत्र का नाम विश्वरूप था। इनका नाम विश्वंभर रखा गया। माता ने इनका नाम निमाई रखा।

बाल्यकाल में निमाई के रूप एवं आनंदमय स्वभाव के कारण बालक, वृद्ध सभी उन्हें प्यार करते थे। इस समय एक दिन श्री जगन्नाथ मिश्र के घर को शून्य कर बड़े भाई विश्वरूप भगवद् दर्शन के लिए व्याकुल हो गृह त्याग कर निकल पड़े। उस समय विश्वरूप केवल सोलह वर्ष के थे तथा निमाई की उम्र सात वर्ष थी।

संन्यास लेने के बाद विश्वरूप ‘शंकरारण्यपुरी’ नाम से प्रसिद्ध हुए।

इस शोक के तीन चार वर्षों के बाद पंडित जगन्नाथ मिश्र ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। बालक निमाई को एकमात्र आश्रय मान कर माता शचीदेवी अपना समय व्यतीत करने लगीं।

नवद्वीप में ही प्रसिद्ध पंडित गंगाधर की पाठशाला में निमाई पढ़ने लगे। निमाई अपनी मेधा एवं तीव्र स्मरण शक्ति के कारण पंडित गंगाधर के बहुत प्रिय थे।

बाल्यकाल में निमाई की चंचलता से त्रस्त नवद्वीप के सभी लोग मां के पास हमेशा कुछ न कुछ शिकायत करते रहते थे। दुःखित माता क्षमा मांग कर पुत्र निमाई के मंगल के लिए प्रभु से प्रार्थना करती रहती थी।

कुछ वर्षों के भीतर ही अपनी पढ़ाई समाप्त कर निमाई ने स्वयं एक पाठशाला प्रारंभ की। इस समय शची देवी ने पुत्र का विवाह वल्लभाचार्य की कन्या लक्ष्मी देवी से करवाया।

उस समय आचार्य निमाई की शिक्षा पद्धति से आकर्षित होकर विभिन्न स्थानों से छात्र इनकी पाठशाला में आकर भरती होने लगे। इसी समय एक दिन भारत के प्रसिद्ध दिग्विजयी पंडित श्री केशव काश्मीरी नवद्वीप पधारे। इनकी काव्यप्रतिभा तथा विचारशक्ति के सामने जो भी आता वह पराजित हो जाता था। विद्या की देवी सरस्वती से इन्होंने कुछ विशेष शक्ति प्राप्त की थी। नवद्वीप के सभी विद्वान पंडित केशव काश्मीरी का नाम सुन कर घबरा गये।

एक दिन निमाई गंगाजी के घाट पर अपने कुछ विद्यार्थियों के साथ बैठ कर शास्त्रों की चर्चा कर रहे थे। उसी समय केशव काश्मीरी भी भ्रमण करते हुए निमाई के पास आए। निमाई ने यथोचित सम्मान प्रदर्शित कर केशव काश्मीरी से गंगाजी के संबंध में कुछ श्लोकों को सुनने की इच्छा व्यक्त की। केशव काश्मीरी अपने स्वरचित गंगाजी के स्तोत्रों को सुना कर कहने लगे कि इसमें कुछ भी दोष नहीं है। पंडित निमाई उसी समय उन स्तोत्रों का उच्चारण कर उसके गुण और दोषों की व्याख्या करने लगे। केशव काश्मीरी श्रुतिधर निमाई की विद्वता से पराजित हो अपने को लज्जित अनुभव कर चले गए। रात के समय देवी सरस्वती ने उन्हें कहा कि निमाई कोई साधारण पंडित नहीं है। देवी ने निमाई का स्वरूप उनके सामने प्रकट किया। दूसरे दिन प्रातःकाल केशव काश्मीरी ने निमाई से मुलाकात की और क्षमा माँगी। इस घटना से निमाई का नाम सभी ओर फैल गया।

कुछ दिनों के बाद निमाई पूर्वी बंगाल भ्रमण के लिए गए। नवद्वीप लौटने के बाद उन्होंने सुना कि सर्प के दंशन से उनकी पत्नी लक्ष्मी देवी ने शरीर त्याग दिया है। दुःखित माता शचीदेवी को निमाई ने सांत्वना दी।

कुछ दिनों के पश्चात् माता ने निमाई का फिर से विवाह करने के लिए अपनी एकांत इच्छा व्यक्त की। माता ने स्वयं पात्री विष्णुप्रिया का निर्वाचन किया और शुभ समय देख कर निमाई का फिर से विवाह कर दिया। निमाई ने पितृ-कर्म करने के लिए गयाजी जाने का विचार किया। माता शचीदेवी से आज्ञा लेकर निमाई गयाजी पहुँचे। वहीं उन्होंने श्री माधवेंद्रपुरी जी के शिष्य श्री ईश्वरपुरी जी से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के बाद से ही उनके जीवन में अलौकिक प्रेम के लक्षण प्रकट होने लगे।

गयाजी से लौटकर गृहस्थी तथा पाठशाला के प्रति इनकी तीव्र वितृष्णा दिखाई देने लगी। सब समय निमाई भाव विभोर रहते थे। प्रायः श्रीकृष्ण प्रगट होकर उन्हें दर्शन देते थे। उनके अदृश्य होते ही वे भगवत्प्रेम से व्याकुल हो रोने लगते थे। इस विरह ज्वाला ने उन्हें पागल के समान कर दिया। माता, पत्नी तथा बंधु लोगों ने इन्हें संसार की तरफ आकर्षित

करने की कोशिश की। पर जिन्होंने एक बार भी मधुर वंशी की ध्वनि सुनी हो उनके लिए संसार का आकर्षण नष्ट हो जाता है।

नवद्वीप के भक्त वैष्णव शुक्लांबर, मुरारी, दामोदर आदि के साथ सब समय निमाई अव कृष्ण तथा उनकी लीलाओं की चर्चा करते हुए व्याकुल हो विलाप करते रहते थे। श्रीवास पंडित के घर प्रायः संकीर्तन में उनकी समाधि अवस्था तथा शरीर में दिव्य और अलौकिक प्रेम के लक्षण दिखाई देने लगे। इस दिव्य भाव के समझदार लोग उस समय नवद्वीप में कम थे। साधारण लोग इस दिव्य भाव को उन्माद या पागलपन कह कर उपहास करने लगे।

माता शचीदेवी व्याकुल होकर सब जगह पुत्र के कल्याण के लिए जाने लगी। पंडित श्रीवास ने माता शचीदेवी को समझाया— “यह पागलपन बहुत भाग्य से मिलता है। यह वायुरोग नहीं है। निमाई के भीतर भक्ति के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। भगवत्प्रेम के कारण इन्हें संसार सूना-सा लग रहा है।”

उसी समय एक दिन शांतिपुर के अद्वैताचार्य के घर में निमाई पहुँचे। वहां संकीर्तन में निमाई के शरीर में भगवत् लक्षणों को देख कर वृद्ध अद्वैताचार्य अपनी तपस्या को सफल मानने लगे। उन्होंने संकीर्तन में भाव में निमग्न निमाई की अपने ईष्ट रूप में पूजा की।

श्री अद्वैताचार्य तुलसी और गंगाजल द्वारा व्याकुल भाव से बहुत दिनों से अपने ईष्ट की पूजा कर रहे थे। जगत् के कल्याण के लिए श्री कृष्ण का आविर्भाव होने से अपनी तपस्या को वे सफल मानने लगे। श्री अद्वैताचार्य की इस मान्यता ने नवद्वीप में हलचल पैदा कर दी। उस समय के समाज में श्री अद्वैताचार्य की विशेष मान्यता थी। उसी समय से भक्त लोग निमाई को गौराङ्ग महाप्रभु के नाम से पुकार कर अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करने लगे।

नवद्वीप में पंडित श्रीवास का आंगन संकीर्तन का मुख्य स्थान हुआ। भक्तगण अपने ईष्ट का आविर्भाव गौराङ्ग महाप्रभु के शरीर में देख कर इनकी पूजा करने लगे। जिस प्रकार चुंबक के आकर्षण से लोहे के टुकड़े अपने आप चले आते हैं, उसी प्रकार गौराङ्ग महाप्रभु के दिव्य लक्षणों से आकर्षित हो विभिन्न स्थानों से भक्त वैष्णवगण आने लगे। इनमें गदाधर, नरहरि, पुंडरिक, हरिदास, संजय, मुकुंद, श्रीधर आदि प्रमुख माने जाते हैं।

इसी समय एक दिन इनके अनन्य पार्षद श्री नित्यानंद अवधूत रूप में श्रीवास के आंगन में प्रगट हुए। इनका जन्म वीरचंद्रपुर (जिला वीरभूम) पश्चिम बंगाल में हुआ था। नित्यानंद बाल्यावस्था में ही एक संन्यासी के साथ विभिन्न तीर्थों का भ्रमण करते हुए वृंदावन पहुँचे। उस समय वे संन्यासी के समान वेश में रहते थे। पर उन्होंने संन्यास नहीं लिया था।

वृंदावन में उन्हें श्रीकृष्ण की लीलाओं का सब समय स्फुरण होता रहता था। वृंदावन में उन्होंने भ्रमण करते हुए कुछ निर्देश प्राप्त किये एवं नवद्वीप में श्रीवास के आंगन में पहुँचे। नित्यानंद के आने की सूचना गौराङ्ग महाप्रभु ने अपने अंतरंग भक्तों को पहले से ही दे रखी थी। उनके आने के बाद से संकीर्तन में जो भाव प्रकट होने लगे उसे भाषा में प्रकट करना असंभव है। भक्त वैष्णवगण नित्यानंद को बलराम तथा गौराङ्ग महाप्रभु को श्रीकृष्ण का अवतार मान कर उपासना करने लगे। माता शचीदेवी नित्यानंद को पाकर अपने प्रथम पुत्र विश्वरूप के समान प्यार करने लगी। वे इन्हें निताई कहने लगी। भक्तगण भी इन्हें निताई अथवा नित्यानंद नाम से पुकारने लगे।

श्री गौराङ्ग महाप्रभु एवं श्री नित्यानंद के भुवनमोहन रूप एवं अपूर्व संकीर्तन के आकर्षण से भक्तगण संसार को भूल से गये। श्रीकृष्ण विरहजन्य महाप्रभु के दैन्य एवं विलाप से लोगों का हृदय व्याकुल हो उठता था। दिन और रात सब समय वे लोग महाप्रभु के साथ संकीर्तन में मग्न रहते थे।

उस समय महाप्रभु के शरीर में संकीर्तन के समय महाभाव के लक्षण दिखाई देने लगे। असंख्य प्रकार की अलौकिक घटनाएँ होने लगीं। जब महाप्रभु भाव के आवेश में रहते तब उनके भीतर ईश्वर के समान सर्वशक्ति व्यक्त होती थी। बाह्य ज्ञान आने पर वे दास्य भाव से अपने ईष्ट को व्याकुल मन से पुकार कर क्रंदन करते रहते थे। एक दिन तो दिव्य ऐश्वर्य प्रकाश कर सात प्रहर तक वे कल्पतरु बन कर रहे। उस समय भक्तों ने जो भी वरदान मांगा, वे सब पूर्ण हो गये। असंख्य भक्त वैष्णवों ने उस दिन अपने प्रभु से भगवत्प्रेम की याचना की, जो बाद में उनके जीवन में प्रकट हुई।

अंतरंग भक्तों को प्रेम प्रदान करने के बाद महाप्रभु ने अब साधारण लोगों के लिए इसे सुलभ बनाने का विचार किया। इस प्रचार कार्य के लिए इन्होंने अपने अनन्यतम श्रेष्ठ पार्षद श्री नित्यानंद एवं श्री हरिदास को चुना। श्री हरिदास जी का जन्म ब्राह्मण वंश में हुआ था, पर वे बाल्यकाल से मुसलमान के घर में पालित हुए थे। साधारण लोग उन्हें मुसलमान ही मानते थे। श्री अद्वैताचार्य के प्रभाव से श्री हरिदास सब समय नाम जप एवं कीर्तन में मग्न रहते थे। मुसलमान नवाब ने उन्हें काफिर मान कर उनको विभिन्न बाजारों में चावुक से मार कर गंगाज्जी में फिकवा दिया। पर भगवत् नाम के प्रभाव से हरिदासजी का कुछ भी नहीं हुआ। अंत में हिंदू तथा मुसलमान सभी उन्हें शक्तिमान महात्मा मान कर श्रद्धा प्रदर्शित करने लगे।

श्री गौराङ्ग महाप्रभु ने श्री नित्यानंद और श्री हरिदास को बुला कर कहा कि आज से नवद्वीप में सर्वत्र तुम लोग कृष्ण नाम का प्रचार करो। लोगों के घर-घर में जाकर उन्हें प्रणाम

कर कृष्ण नाम की भिक्षा माँगो। नाम प्रचार के कार्य में जाति, धर्म आदि का विचार न करो।

नित्यानंद जी व हरिदास जी ने नगर में नाम-संकीर्तन का प्रचार कार्य चालू किया। वे रास्ते में जाते हुए हर व्यक्ति के चरणों में प्रणाम कर उनसे कृष्ण नाम जप करने की भिक्षा माँगने लगे। यह कार्य सहज नहीं था। कोई व्यंग्य करता था तो कोई गाली-गलौज तथा उपहास करता था। कुछ भक्तगण इनके प्रति अपनी श्रद्धा भी प्रदर्शित करते थे।

भक्ति का इस प्रकार से प्रचार कार्य इसके पहले किसी ने भी नहीं किया था। आध्यात्म पथ पर अग्रसर होने के लिए इस प्रकार के सहज भक्ति मार्ग का प्रचार उन लोगों ने शुरू किया। कृष्णकथा और इन लोगों के दैन्य एवं आर्तभाव युक्त नाम संकीर्तन के प्रभाव से लोगों की आंखों से अश्रु स्वतः निकल आते थे।

इसी प्रकार से नाम प्रचार करते हुए एक दिन वे नवद्वीप के कुख्यात दस्यु जगन्नाथ एवं माधव के पास पहुँचे। उस समय नवद्वीप में जगन्नाथ और माधव के नाम से लोग डर कर कांपते थे। ऐसा कोई भी कार्य नहीं था, जो ये दोनों भाई नहीं करते थे। नर हत्या, चोरी, परनारी हरण आदि पाप कार्यों को ये अपना नित्यकर्म मानते थे।

नित्यानंद जी ने मन में विचार किया कि साधारण लोगों में हरिनाम संकीर्तन का प्रभाव तो कई जगह देखा गया है, पर इस प्रकार के पापी लोग यदि हरिनाम करें तभी लोग नाम पर विश्वास करेंगे। ऐसा सोच कर नित्यानंद और हरिदास जोर-जोर से नाम कीर्तन करते हुए जगन्नाथ और माधव के सामने पहुँचे। उस समय दोनों शराब के नशे में थे। नाम श्रवण करते ही क्रोधित होकर वे लोग नित्यानंद तथा हरिदास को मारने के लिए दौड़े। नित्यानंद और हरिदास वहाँ से भाग गए। गौराङ्ग महाप्रभु के पास जाकर उन्होंने इन लोगों का सब हाल बताया एवं उनके उद्धार की प्रार्थना की। महाप्रभु ने हंस कर कहा की पापी लोगों पर जब तुम्हारी कृपा हुई है। तो उनका उद्धार अवश्य होगा।

दो चार दिन बाद फिर से नित्यानंद और हरिदास उन दोनों दस्युओं के सम्मुख नाम संकीर्तन करने लगे। अचानक क्रोध से पागल होकर माधव ने एक मिट्टी के कलसी के टुकड़े को उठा कर नित्यानंद के सिर पर जोर से मार दिया। नित्यानंद के सिर से खून की धारा वह निकली। चारों तरफ भीड़ जम गई। माधव फिर से नित्यानंद को मारने के लिए दौड़ा। तब जगन्नाथ ने अपने भाई माधव को रोका एवं कहा कि एक संन्यासी को मारने से क्या लाभ होगा।

इसी समय गौराङ्ग महाप्रभु भी वहाँ पहुँच गए। उस समय नित्यानंद के सिर से खून

वह रहा था। क्रोधित होकर महाप्रभु ने कहा कि नित्यानंद को जिन्होंने मारा है, उन्हें मैं कभी क्षमा नहीं करूँगा।

महाप्रभु के वचन को सुन कर नित्यानंद ने शांत भाव से कहा कि जगन्नाथ ने कुछ भी नहीं किया है। इसे आप क्षमा करें। महाप्रभु ने जगन्नाथ का आलिंगन करके कहा—“तुमने नित्यानंद के प्राणों की रक्षा की है। मैं आशीर्वाद देता हूँ— तुम्हें दुर्लभ कृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो।”

महाप्रभु के स्पर्श के प्रभाव से रोते हुए जगन्नाथ उनके चरणों में गिर पड़ा। इधर माधव का हृदय भी महाप्रभु के दर्शन एवं जगन्नाथ पर उनकी कृपा को देख कर व्याकुल हो उठा। माधव भी उनके चरणों में रोते हुए गिर पड़ा एवं इस पाप से उद्धार के लिए प्रार्थना करने लगा। महाप्रभु ने उसे नित्यानंद जी से क्षमा मांगने के लिए कहा। अब माधव उठ कर नित्यानंद जी के चरणों में गिर पड़ा। नित्यानंद जी ने करुणावश कहा— “आज तक जो कुछ पाप तुमने किया है वह सब मैंने ग्रहण किया। श्रीकृष्ण की कृपा से तुम्हें दुर्लभ प्रेम की प्राप्ति हो।”

इस प्रकार से जगन्नाथ और माधव दोनों परम वैष्णव हो गए। अपना घर-संसार त्याग कर उस दिन से उन्होंने अपना सारा समय जप, ध्यान एवं वैष्णवों की सेवा में लगा दिया। प्रतिदिन प्रातःकाल गंगा स्नान के लिये आने वाले लोगों के चरणों में वे दोनों प्रणाम करते थे एवं अपने पूर्वकृत अपराध के लिए क्षमा प्रार्थना किया करते थे। इनके अपने हाथों से बनाया गया गंगाजी का घाट आज भी “जगाई-माधाई घाट” के नाम से नवद्वीप में प्रसिद्ध है।

जगन्नाथ एवं माधव के इस प्रकार के हृदय परिवर्तन से नवद्वीपवासी विस्मित हो गए। श्री हरिनाम संकीर्तन एवं महाप्रभु की अलौकिक क्षमता पर उन्हें विश्वास हो गया। इसके बाद से नवद्वीप में सब जगह संकीर्तन की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ने लगी।

उस समय नवद्वीप का शासक एक मुसलमान काज़ी था। वह हिंदू-विद्वेषी था। सब तरफ कीर्तन के प्रचार से वह मन ही मन काफी चिंतित हो गया। इस बीच कुछ हिंदू लोग ही महाप्रभु की इस प्रकार की प्रतिष्ठा से शंकित हो उठे। उन लोगों ने भी काज़ी से शिकायत की। काज़ी ने अपने अनुचरों के द्वारा नगर संकीर्तन करने वाले वैष्णवों के मृदंग (खोल) को तोड़ कर उन्हें डरा-धमका कर भगा दिया।

वैष्णवों ने महाप्रभु के पास आकर काज़ी के इस कार्य की आलोचना की। महाप्रभु ने क्रोधित होकर नित्यानंद को बुला कर कहा— “आज शाम को मैं स्वयं संकीर्तन में निकलूँगा। हरि नाम कीर्तन में आज कौन बाधा उत्पन्न करता है, उसे मैं देख लूँगा।”

महाप्रभु के इस प्रकार के आदेश को प्राप्त कर वैष्णवों ने उत्साहपूर्वक नित्यानंदजी से सलाह कर विशाल रूप से नगर संकीर्तन का आयोजन किया।

अद्वैत, नित्यानंद, श्रीवास, हरिदास आदि महाप्रभु के पार्षदगण आज विभिन्न प्रकार के वेष से सुसज्जित हो संध्या के समय नगर कीर्तन में निकल पड़े। आज श्री गौराङ्ग महाप्रभु का वेश बहुत मनोरम एवं आकर्षक था। महाप्रभु भावावेश में संकीर्तन में मग्न हो धीरे-धीरे काज़ी के घर की तरफ चले। संध्या का समय होने से काफी संख्या में जलती हुई मशालें भी इस संकीर्तन दल के साथ में थीं। उस समय भारत का शासन मुसलमानों के हाथों में था। उनके विरुद्ध इस प्रकार का अहिंसक आंदोलन इसके पहले किसी ने भी नहीं सुना था।

जब काज़ी के घर के सामने विशाल संकीर्तन का दल पहुंचा तब वह डर के मारे अपने घर के भीतर छिप गया।

महाप्रभु ने काज़ी को बुलवाया और उससे संकीर्तन बंद करवाने का कारण पूछा। लज्जित होकर काज़ी ने क्षमा मांगी एवं उसने कहा— “कुछ हिंदू लोगों ने भी इस प्रकार के उच्च स्वर से संकीर्तन को हिंदूशास्त्र विरोधी कार्य कह कर शिकायत की थी।”

महाप्रभु ने उसे नाम कीर्तन का माहात्म्य बताया। नाम कीर्तन जोर से आवाज करते हुए करने से अन्य सुनने वाले मनुष्य, पशु, कीट, पतंग आदि सभी का उपकार होता है। स्वयं मन में नाम जप करने से केवल अपना उपकार होता है। इस कारण उच्च स्वर से नाम कीर्तन करने का निर्देश सब हिंदू शास्त्रों में है।

महाप्रभु से नाम कीर्तन की महिमा को सुनने के बाद काज़ी ने कहा— “आज से कीर्तन में कोई बाधा नहीं देगा।” बाद में वह काज़ी भी परम वैष्णव बन गया था। उसका समाधि स्थान आज भी नवद्वीप में “काज़ी की समाधि” नाम से प्रसिद्ध दर्शनीय स्थलों में है।

मुसलमान काज़ी के ऊपर महाप्रभु का इस प्रकार प्रभाव पड़ने पर भक्त लोग आनंदपूर्वक संकीर्तन करने लगे। उस समय संकीर्तन में साधारणतः निम्न पद गाया जाता था—

हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः ।

यादवाय माधवाय केशवाय नमः ॥

गोपाल गोविंद राम श्री मधुसूदन ॥

एक दिन श्रीवास के आंगन में महाप्रभु संकीर्तन में भावमग्न थे। उसी समय श्रीवास के शिशुपुत्र ने देह त्याग दी। घर के सब लोगों को श्रीवास ने रोने से मना कर दिया। श्रीवास ने घर के सब लोगों से कहा— “यदि कीर्तन में महाप्रभु का आनंद भंग हो जाय तो मैं निश्चय ही आज गंगाजी में डूब कर आत्महत्या कर लूंगा।” ऐसा कह कर श्रीवास स्वयं कीर्तन में आकर सम्मिलित हो गए। अंतर्दामी महाप्रभु से घटना अविदित न रही। अचानक उन्होंने कहा— “आज कीर्तन में मेरा मन ठीक बैठ नहीं रहा है— इसका क्या कारण है।” उसी समय किसी भक्त ने सब घटना कही।

महाप्रभु ने मृत शिशु के समीप जाकर उसे पुकार कर कहा— “तुम कहाँ गए हो, तुम्हारे विरह में माता तथा सब लोग शोक मना रहे हैं।”

अचानक मृत शिशु ने आंखें खोली। उसने उत्तर दिया— “जितने दिनों तक मेरी आयु थी, मैंने श्रीवास के पुत्र रूप में अपना समय बिताया। प्रारब्ध शेष हो जाने पर मेरे साथ अब किसी का कुछ भी संबंध नहीं है। आप मेरा प्रणाम ग्रहण करें।” ऐसा कह कर उस बालक ने फिर से प्राण त्याग दिये।

शोकसन्तप्त परिवार को सांत्वना प्रदान कर महाप्रभु ने कहा— “आज से तुम लोग मुझे और नित्यानंद को अपने पुत्र के समान समझो।”

इस प्रकार गौराङ्ग महाप्रभु की नित्य कुछ न कुछ अलौकिक लीला चलती रही। गयाजी से महाप्रभु को आये लगभग एक वर्ष बीत गया था। इस बीच गृहस्थ भक्तों का एक वृहत् समुदाय बन गया। अब महाप्रभु ने अपने मन में प्रेमधर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिए संन्यास लेने का विचार किया। अपने दो-चार अंतरंग भक्तों को तथा माता शचीदेवी को उन्होंने अपना संकल्प सुनाया और माँ से अनुमति भी प्राप्त कर ली।

शुभ समय देख कर एक दिन आधी रात के समय वे अपने घर से संन्यास लेने निकल पड़े। उस समय घर में पत्नी विष्णुप्रिया एवं माता शचीदेवी थी। नवद्वीप से महाप्रभु सीधे काटवा (पं.बंगाल) में प्रसिद्ध संत श्री केशवभारतीजी के पास पहुँचे।

उस दिन पुण्य माघ महीने की पूर्णिमा तिथि थी। संन्यास लेने के समय महाप्रभु की उम्र चौबीस वर्ष की थी। केशव भारतीजी ने गंगाजी के किनारे विरजा होम करवा कर संन्यास प्रदान किया। संन्यास लेने के बाद से इनका नाम श्रीकृष्ण चैतन्य भारती पड़ा। पर साधारणतया श्री चैतन्य महाप्रभु के नाम से वे ज्यादा परिचित हुए।

संन्यास के बाद उन्होंने जगन्नाथपुरी में रहने का निश्चय किया। जगन्नाथपुरी जाते समय उनके साथ नित्यानंद तथा दो-चार भक्त भी साथ गए थे।

पुरी में जगन्नाथजी का दर्शन कर वे भावावेश में जगन्नाथ जी को आलिंगन करने दौड़े। उस समय राज पंडित सार्वभौम भट्टाचार्य भी मंदिर आए थे। वे भावस्थ महाप्रभु को सेवकों की सहायता से अपने घर ले आए। महाप्रभु के रूप एवं भाव को देख कर सार्वभौम प्रभावित हो गए। सार्वभौम उस समय वेदांत के प्रसिद्ध विद्वान माने जाते थे। वेदांत पढ़ने के लिए दूर देशों से संन्यासीगण उनके पास आते रहते थे। महाप्रभु को भी उन्होंने वेदांत पढ़ाना शुरू किया।

शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित वेदांत की व्याख्या ज्यादा प्रचलित है। सार्वभौम भी उसी व्याख्या के अनुसार शिक्षा देते थे। महाप्रभु ने शंकराचार्य द्वारा प्रचारित वेदांत के भाष्य की समालोचना की। उन्होंने वेदांत की आलोचना करते हुए भगवत्प्रेम को परम पुरुषार्थ एवं श्री भगवान को सच्चिदानंदमय प्रमाणित किया। महाप्रभु से इस प्रकार की अपूर्व व्याख्या सुन कर सार्वभौम आश्चर्यचकित हो गए। एक श्लोक की महाप्रभु ने अठारह तरह से व्याख्या करते हुए भक्तिमार्ग की श्रेष्ठता को प्रमाणित किया।

नवीन संन्यासी द्वारा इस प्रकार की व्याख्या सुन कर सार्वभौम उनके चरणों में गिर पड़े। उन्होंने स्तुति करते हुए कहा— “आप मनुष्य वेश में कोई दिव्य पुरुष हैं। आप कृपया अपना स्वरूप मुझे दिखाइए।” अंत में महाप्रभु ने सार्वभौम को अपना षट्भुज रूप दिखाया। इस रूप को देख कर सार्वभौम भाव-समाधि में मग्न हो गए।

इस घटना के बाद से सार्वभौम अपने ईष्ट के रूप में महाप्रभु की पूजा करने लगे। सार्वभौम की इस प्रकार की स्वीकृति से महाप्रभु का नाम सब तरफ फैल गया।

नीलाचल पुरी में कुछ दिनों तक रहने के बाद महाप्रभु दक्षिण भारत के तीर्थों का भ्रमण करने निकल पड़े। उनके मुख से उस समय जिसने भी नाम श्रवण किया वही उनके चरणों में हमेशा के लिए आत्मसमर्पण कर बैठे। उस समय भावमग्न हो कर महाप्रभु निम्न संकीर्तन करते थे—

कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम।

राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम॥

इस प्रकार से नाम कीर्तन का प्रचार करते हुए वे गोदावरी नदी के किनारे विधानगर नामक स्थान में पहुँचे। वही रामानंदराय नाम के प्रसिद्ध राजा महाप्रभु का दर्शन करने आए। राजा अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान एवं परम धार्मिक माने जाते थे। महाप्रभु ने भावावेश में आलिंगन किया। महाप्रभु के स्पर्श से उनके शरीर में अश्रु, पुलक आदि सात्विक भाव प्रकट हो गए। रामानंदराय के आग्रह पर महाप्रभु दस दिन तक वहां रहे। महाप्रभु के पास

निर्जन में नित्य राजा आकर श्रीमद्भागवत के मधुर रस का आस्वादन किया करते थे। महाप्रभु ने कृपा कर रामानंद के समक्ष भी अपने दिव्य रूप को प्रकट किया। यही रामानंद अपने शेष जीवन में महाप्रभु के अंतरंग पार्षदों में प्रधान माने जाते थे।

श्री चैतन्य महाप्रभु वहां से रामेश्वर की ओर अग्रसर हो गए। यह केवल तीर्थों का दर्शन एवं भ्रमण नहीं था। उस समय जिन्होंने भी महाप्रभु का दर्शन, स्पर्श अथवा नाम कीर्तन का श्रवण किया, वही प्रेमावेश में भावमग्न हो जाता था।

भ्रमण करते हुए महाप्रभु श्री रंगमंदिर में पहुँचे। वहां उन्होंने देखा एक भक्त ब्राह्मण मंदिर में नित्य आकर गीताजी के अष्टादश अध्यायों का पाठ करता है। संस्कृत का ज्ञान कम होने से वह उच्चारण ठीक से नहीं करता था। पर पाठ के समय भावावेश में उसके नेत्रों से अश्रु की धारा बहती रहती थी। साधारण लोग उसका उपहास करते थे। उस दिन पाठ समाप्त होने पर महाप्रभु ने उससे पूछा कि आप गीताजी का अर्थ समझ पाते हैं अथवा नहीं? ब्राह्मण ने उत्तर दिया— “मुझे गीताजी के श्लोकों का अर्थ कुछ भी समझ में नहीं आता है। पर जब भी मैं गीताजी का पाठ करता हूँ तब मुझे श्रीकृष्ण, अर्जुन को कुछ उपदेश दे रहे हैं, ऐसा दृश्य दिखाई पड़ता है। श्रीकृष्ण के मधुर रूप को देख कर भावावेश में मैं रोता रहता हूँ।”

इसे सुनते ही महाप्रभु ने अपने विशाल बाहु द्वारा उसे आलिंगन करते हुए कहा—“भाई! तुम्हें मूर्ख कौन कहेगा? गीताजी का भावार्थ तुमने ही ठीक समझा है। तुम्हारा गीताजी का पाठ ही ठीक है।”

साधारणतः लोग शब्दों की विभिन्न प्रकार की व्याख्या और पांडित्य प्रदर्शन में अपना समय व्यतीत करते हैं। हमारे शास्त्रों का प्रमुख उद्देश्य भगवत्प्राप्ति है। उसके लिए आवश्यक साधना की पद्धति को प्राप्त होने के बाद उसी में डूब जाना चाहिए। तभी लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है।

इस प्रकार दो वर्षों तक विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए महाप्रभु रथयात्रा के पहले पुरी पहुँचे। बंगाल से महाप्रभु के भक्तगण हर वर्ष रथयात्रा के पहले पुरी आते थे। रथ के आगे संकीर्तन में महाप्रभु के मधुर प्रेमावेश में नृत्य को देख कर भक्तों के हृदय में दिव्य आनंद की तरंग उठती थी। उत्कल राज प्रतापरुद्र भी इस मधुर दृश्य को देख कर सर्वदा के लिए महाप्रभु के भक्तों में सम्मिलित हो गए।

इसी समय एक दिन नित्यानंदजी को बुला कर महाप्रभु ने कहा— “मैंने सर्वदा के लिए गृह-त्याग कर संन्यास ले लिया है। तुम भी यदि मेरी तरह अवधूत वृत्ति से इधर-उधर भटकते रहो तो संसारी गृहस्थ लोगों का उद्धार किस प्रकार से होगा? मेरा अनुरोध है कि तुम विवाह

करो। तुम्हारे द्वारा आदर्श गृहस्थ धर्म की स्थापना हो। गृहस्थ लोग तुम्हें देख कर अपना जीवन भी उसी तरह व्यतीत करेंगे। मनुष्य के कल्याण के लिए तुम्हें गृहस्थ आश्रम में रहते हुए वैष्णव धर्म का प्रचार करना पड़ेगा।”

नित्यानंदजी संन्यासी के समान अवधूत रूप में रहते थे पर उन्होंने संन्यास ग्रहण नहीं किया था। महाप्रभु के निर्देश से पुरी से वापस लौट कर नित्यानंदजी ने विवाह किया। खड़दह (प. बंगाल) में उन्होंने अपना अधिक समय व्यतीत किया। उनके दयालु हृदय और अलौकिक दिव्यशक्ति संचारयुक्त नाम प्रचार से सारे बंगाल में उनका नाम फैल गया। उनके वंश में एक से एक बड़े वैष्णव महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रदर्शित प्रेम-धर्म का प्रचार किया एवं साधारण लोगों के लिए उसे सुलभ बनाया।

चैतन्य महाप्रभु ने अव वृंदावन जाने का विचार किया। भक्तों के अनुरोध से उन्होंने केवल एक सेवक को साथ में लिया। पांच सौ वर्ष पहले मुसलमानों के अत्याचार से वृजमंडल के अधिकतर तीर्थ स्थान लुप्त हो गए थे। वृंदावन में पहुँचने के साथ ही वे प्रेमावेश में श्रीकृष्ण भगवान की विभिन्न लीलाभूमि में विचरण करने लगे। राधाकुंड, श्यामकुंड तथा अन्य कई लुप्त तीर्थों का प्राकट्य उन्होंने किया।

श्री चैतन्य महाप्रभु के परमगुरु श्री माधवेन्द्रपुरीजी द्वारा स्वप्न में प्राप्त गोवर्धन नाथजी का भी उन्होंने दर्शन किया। वाद में मुसलमानों के अत्याचारों से वह मूर्ति श्री वल्लभाचार्य के अनुयायियों द्वारा नाथद्वारा (उदयपुर) में स्थापित की गई, जिसकी सेवा पूजा आज भी निष्ठापूर्वक की जा रही है।

वृंदावन से लौटते हुए महाप्रभु प्रयाग पहुँचे। यहीं श्री वल्लभाचार्य से इनकी मुलाकात हुई। महाप्रभु के दिव्य भाव और मधुर संकीर्तन से प्रभावित होकर वल्लभाचार्यजी उन्हें अपने घर भी ले गए थे।

प्रयाग में श्री रूप गोस्वामीजी अपना सब कुछ त्याग कर महाप्रभु के चरणों में सम्मिलित हुए। रूप और सनातन दोनों भाई थे। बंगाल के बादशाह हुसैन शाह के ये दोनों भाई प्रधान कर्मचारी थे। श्री रूप की काव्य प्रतिभा एवं सनातन का शास्त्रों में पाण्डित्य विद्वत् समाज में प्रसिद्ध था। तीव्र भगवत् अनुराग से दोनों भाई विषय संपत्ति आदि त्याग कर श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रदर्शित मार्ग में अग्रसर होने लगे। सनातन काशी में श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ सम्मिलित हुये। दोनों भाई महाप्रभु के निर्देश से वृंदावन में रहते थे। इनके द्वारा स्थापित गोविंदजी एवं मदनमोहनजी का मंदिर प्रसिद्ध है। इन्होंने वृंदावन के लुप्त तीर्थों का उद्धार कार्य तथा वैष्णव साधना पद्धति के ग्रंथों का प्रणयन किया। इनके द्वारा लिखी गई पुस्तकों का वैष्णव साहित्य में प्रमुख स्थान है।

काशी में उस समय संन्यासी संप्रदाय में स्वामी प्रकाशानंद सरस्वती प्रधान माने जाते थे। उनकी विद्वता से प्रभावित होकर विभिन्न स्थानों से, विद्यार्थी वेदांत तथा अन्य शास्त्रों का अध्ययन करने आते थे। महाप्रभु के नाम संकीर्तन में भावावेश में नृत्य को उन्होंने संन्यासी के आचरण के प्रतिकूल कहा। संन्यासी होते हुए वेदांत का अध्ययन न कर महाप्रभु केवल नाम जप एवं संकीर्तन करते हैं, यह कार्य उन्हें अच्छा नहीं लगा।

उस दिन महाप्रभु वेणीमाधव के मंदिर का दर्शन कर महाराष्ट्र के एक भक्त ब्राह्मण के घर भिक्षा ग्रहण करने गए। वहां स्वामी प्रकाशानंदजी भी आमंत्रित थे। महाप्रभु के मधुर भाव एवं संकीर्तन में दिव्य रूप को देख कर प्रकाशानंदजी आकर्षित हो गए।

विचार निपुण संन्यासी प्रधान प्रकाशानंदजी ने वेदांत विचार को संन्यासी का प्रधान कार्य कहा एवं नाम जप तथा कीर्तन को अनाधिकारी लोगों का साधन कहा। श्री चैतन्य महाप्रभु ने विभिन्न शास्त्रों से प्रमाणित किया कि मनुष्य जीवन का प्रधान लक्ष्य भगवत्प्रेम की प्राप्ति है और उसकी प्राप्ति की मुख्य साधना नाम जप तथा कीर्तन है। महाप्रभु के पास से वेदांत ब्रह्मसूत्र आदि शास्त्रों की इस प्रकार की व्याख्या सुन कर प्रकाशानंदजी मुग्ध होकर महाप्रभु के चरणों में गिर पड़े। महाप्रभु ने उन्हें प्रेम प्रदान कर वृंदावन भेज दिया। उनका नाम भी उन्होंने बदल कर प्रबोधानंद रखा। प्रबोधानंदजी द्वारा लिखी गई वृंदावन-शतक आदि ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। प्रकाशानंदजी के इस प्रकार के परिवर्तन से काशी में महाप्रभु का नाम सब तरफ फैल गया।

काशी से भ्रमण करते हुए महाप्रभु नीलाचल पुरी पहुँचे। रास्ते में जंगलों में शेर, हाथी, रीछ आदि वन्य प्राणियों ने भी महाप्रभु के मुख से नाम श्रवण कर नृत्य किया था। इस अलौकिक घटना का वर्णन साथ में गये सेवक द्वारा भक्तों को मालूम हुआ।

पुरी आने के बाद शेष अठारह वर्ष उन्होंने वहीं बिताये। उत्तर और दक्षिण भारत की धर्म और संस्कृति की मिलनभूमि नीलाचल पुरी है। दारुब्रह्म श्री जगन्नाथजी का दर्शन एवं महाप्रसाद का सेवन करके सारे भारतवर्ष के लोग अपने को धन्य समझते हैं। इसी नीलाचल से महाप्रभु धीरे-धीरे सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध हो गए।

पुरी में महाप्रभु गंभीरा नामक मठ में रहते थे। उनके निकट स्वरूप दामोदर रहते थे। निकट उद्यान में श्री हरिदासजी रहते थे। रूप और सनातन पहले मुसलमान बादशाह के मंत्री थे। इस कारण अपने को अपवित्र समझ कर श्री जगन्नाथजी के मंदिर में प्रवेश नहीं करते थे। हरिदासजी भी इसी तरह मंदिर में प्रवेश नहीं करते थे। रूप और सनातन पुरी आने पर हमेशा श्री हरिदासजी के पास ठहरते थे।

श्री चैतन्य महाप्रभु नित्य प्रातःकाल समुद्र स्नान एवं श्री जगन्नाथजी का दर्शन करके

भक्त हरिदास की कुटिया में आते थे। यहां कुछ समय रह कर गंभीरा मठ में अपनी छोटी-सी कुटिया में आकर नाम समाधि में मग्न रहते थे। उस समय उनके शरीर में प्रेम के अनेक प्रकार के अलौकिक लक्षण दिखलाई पड़ते थे, जिसकी धारणा करना साधारण लोगों के वश के बाहर है।

एक दिन महाप्रभु ने हरिदासजी के पास जाकर देखा कि वे नाम जप में मग्न हैं। सूर्य का ताप उनके शरीर पर पड़ रहा है, पर हरिदासजी को अपने शरीर का बोध नहीं है। महाप्रभु ने मौलश्री (वकुल) वृक्ष के एक छोटे से टुकड़े को लेकर वहाँ जमीन में लगा दिया। थोड़े ही समय में उसने एक विशाल वृक्ष का आकार धारण कर लिया। आज भी वह पांच सौ वर्ष का प्राचीन वृक्ष पुरी में सिद्ध वकुल वृक्ष नाम से प्रसिद्ध है। हरिदास जी उसी वृक्ष के नीचे बैठ कर भजन किया करते थे।

सनातन गोस्वामी वृंदावन से महाप्रभु का दर्शन करने के लिए पुरी आए। रास्ते में झारखंड के जंगलों के भीतर से आते समय दूषित जल आदि के सेवन से उनके शरीर को चर्मरोग हो गया। पुरी में सनातन हरिदासजी के पास ठहरे। उस दिन महाप्रभु नित्य की तरह हरिदासजी की कुटिया में आकर सनातन को देखते ही आलिंगन करने के लिए आगे बढ़े। सनातन के कहा— “प्रभो! मुझे आप स्पर्श न करें। मेरा शरीर चर्मरोग से ग्रस्त है। आपके देव दुर्लभ शरीर से इसका स्पर्श न हो, यही मेरी प्रार्थना है।” महाप्रभु ने सनातन का आलिंगन करते हुए कहा— “तुम परम विरक्त और वैष्णव हो। तुम्हारे स्पर्श से मैं पवित्र हो जाऊँगा।” महाप्रभु ने सनातन को कुछ दिनों तक पुरी में रहने का निर्देश दिया।

सनातन ने अपने मन में निश्चय किया कि महाप्रभु नित्य मेरे पास आकर प्रेमवश मुझे आलिंगन करते हैं। इसी कारण रथयात्रा के दिन रथ के चक्के के नीचे गिर कर मैं अपना प्राण त्याग दूँगा। अन्तर्दामी महाप्रभु से यह घटना अविदित न रही। दूसरे दिन सवेरे महाप्रभु ने आते समय कहा— “सनातन तुम्हारे देह और मन को तुमने मुझे अर्पण कर दिया है। इस पर तुम्हारा कुछ भी अधिकार नहीं है। इस प्रकार से आत्महत्या करना महापाप है। तुम अपने मन का संकल्प छोड़ दो।” ऐसा कह कर महाप्रभु ने सनातन का आलिंगन किया। इसके बाद से सनातन का शरीर ठीक हो गया।

साल भर पुरी में रहने के बाद उन्होंने सनातन को वृंदावन भेज दिया। वृंदावन में महाप्रभु के निर्देश से लोकनाथ, भूगर्भ गोस्वामी, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट आदि वैष्णव महात्माओं ने भी लुप्त तीर्थों का उद्धार किया। इन लोगों ने वृंदावन में कठोर तपस्या की थी। इनके आदर्शों का अनुसरण कर एक त्यागी वैष्णव संप्रदाय तैयार हो गया। इन्होंने ब्रज के विभिन्न तीर्थों तथा लुप्त विग्रहों की पुनः प्रतिष्ठा की। उसी समय वृंदावन के प्रसिद्ध संत

हरिदासजी ने श्री वांकेबिहारीजी की स्थापना की थी। वह समय वैष्णव संप्रदाय का स्वर्णयुग था।

महाप्रभु के गृहस्थ भक्तों में श्री अद्वैताचार्य, श्री नित्यानंद, राघव पंडित, श्रीवास आदि द्वारा वैष्णव धर्म का प्रचार हुआ। साधारणतः दीक्षा की दो परंपरायें प्रचलित हैं। एक त्यागी शिष्यों की शिष्य परंपरा और दूसरी गृहस्थ महात्माओं की वंश परंपरा। गृहस्थ वैष्णवों की वंश परंपरा के आचार्य कुलगुरु कहलाते हैं। इनके आदर्शों को साधारण गृहस्थ व्यक्ति सहज अनुसरण कर सकते हैं। महाप्रभु के इस प्रकार त्यागी और गृहस्थ वैष्णवों के द्वारा प्रेम-धर्म का प्रचार कार्य बहुत शीघ्रता से हुआ।

महाप्रभु यद्यपि पुरी में रहते थे, पर उनके अंतरंग भक्त विभिन्न स्थानों में अलौकिक रूप से उनका दर्शन एवं निर्देश प्राप्त करते थे। विशेष रूप से माता शचीदेवी, श्री नित्यानंद, श्री अद्वैत, राघव पंडित, श्रीवास के आंगन में संकीर्तन में प्रायः भक्तों के समक्ष महाप्रभु प्रकट हो जाते थे। इसका वर्णन वैष्णव ग्रंथों में पाया जाता है। वृंदावन तथा विभिन्न स्थानों में रहने वाले त्यागी भक्तों के समक्ष भी महाप्रभु प्रायः प्रकट हो आवश्यक निर्देश दे जाते थे। इन्हीं कारणों से लोग महाप्रभु को ईश्वर का अवतार मान कर सर्वत्र पूजा करने लगे।

पुरी में हर वर्ष रथयात्रा के बाद जगन्नाथजी “गुण्डिचावाड़ी” नामक स्थान में सात दिन तक रहते हैं। वहां सात दिन तक विशेष भोग एवं पूजा की जाती है। हर वर्ष महाप्रभु स्वयं रथयात्रा के पहले अपने भक्तों के साथ “गुण्डिचावाड़ी” की सफाई करते थे। इस सेवा कार्य को उनके भक्तगण आज भी करते आ रहे हैं। रथयात्रा के समय महाप्रभु वैष्णवों के साथ रथ के सम्मुख संकीर्तन करते हुए “गुण्डिचावाड़ी” तक आते थे। उस समय संकीर्तन में उनके मधुर नृत्य एवं कीर्तन को सुन कर भक्तगण अपने को धन्य समझते थे। प्रेमावेश में साधारण दर्शकों की आँखों से भी अश्रुधारा निकल आती थी।

पुरी के एकांत स्थान में गदाधर नामक भक्त अपने ईष्ट गोपीनाथजी की सेवा पूजा किया करते थे। महाप्रभु प्रायः वहां जाकर भक्त गदाधर के पास श्रीमद्भागवत् के पाठ का श्रवण तथा भिक्षा ग्रहण किया करते थे। वृद्ध अवस्था में, खड़ी हुई गोपीनाथ जी की मूर्ति का वेश और शृंगार आदि करने में गदाधरजी को असुविधा होने लगी। अंत में एक दिन रात्रि में सोने के समय उनके मन में विचार आया कि गोपीनाथजी की सेवा अब मुझसे न हो सकेगी। सुबह जब उन्होंने मंदिर का पट खोला तब देखा कि गोपीनाथजी की खड़ी हुई मूर्ति पद्यासन में बैठी हुई है। अपने ऊपर भगवान की इस प्रकार कृपा देख कर गदाधर भाव विह्वल हो रोने लगे। आज भी वह मूर्ति पुरी में “टोटा गोपीनाथ” नाम से प्रसिद्ध है।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रागानुगा भजन की पद्धति का प्रचार किया। उन्होंने स्वयं कोई

ग्रंथ नहीं लिखा और न किसी मंदिर आदि की स्थापना की। अपने उपदेशों को आठ श्लोकों में उन्होंने वर्णित किया है जो “शिक्षाष्टक श्लोक” नाम से प्रसिद्ध है। उन्होंने स्वयं मंत्र दीक्षा केवल स्वरूप, दामोदर, राय रामानंद, शिखि माहति और उसकी बहन माधवी देवी को दी थी। उन्होंने दूसरे भक्तों से शक्ति संचार पूर्वक विभिन्न कार्य करवाए थे, ऐसा वैष्णव महात्माओं का मत है। स्वयं वे पुरी में रहते थे पर विभिन्न स्थानों से हजारों की संख्या में लोग अज्ञात आकर्षण से चले आते थे। भक्तगण इनके दर्शन अथवा कीर्तन के श्रवण से अपने को धन्य समझते थे।

वेदों में परमात्मा को सत् चित् आनंदमय कहा गया है। महाप्रभु का जीवन मानो सत् चित् आनंद का साकार विग्रह था। उनका कहना था— ईश्वर परम करुणामय एवं मंगलमय हैं। उनका प्रेम हर जीव पर समान रूप से है। मायाबद्ध जीव का उद्धार करना उनका मुख्य कार्य है। अपने दिव्य प्रेम से वे भक्तों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। उनके नाम स्मरण तथा कीर्तन से भगवत्कृपादृष्टि साधक पर पड़ती है। भगवान के साथ मनुष्य का नित्य संबंध है। वह ईश्वर का नित्य दास है। इस संबंध को साधक नामस्मरण, विग्रह सेवा तथा मन में राधाकृष्ण की लीला के स्मरण-मनन से समझ पाता है।

महाप्रभु द्वारा प्रचारित प्रेम भक्ति धर्म को हर जाति तथा वर्ण के लोग सरलता से ग्रहण कर सकते हैं। किसी भी जाति अथवा वर्ण के लोग भगवत्स्मरण से दिव्यप्रेम के अधिकारी हो सकते हैं। चाहे संन्यासी हो अथवा शूद्र या ब्राह्मण, जिन्होंने श्री कृष्ण प्रेम की प्राप्ति की हो— वही गुरु हो सकता है। इसी कारण मुसलमान कुल में पालित होने पर भी हरिदासजी नाम जप से जगत्पूज्य हो गए।

उस समय बंगाल के प्रसिद्ध एवं धनी जमींदार हिरण्यदास के एकमात्र पुत्र रघुनाथ थे। हरिदासजी तथा नित्यानंदजी के सत्संग के प्रभाव से वचन से ही रघुनाथ का आकर्षण श्री चैतन्य महाप्रभु की ओर था। अल्प उम्र में ही तीव्र वैराग्य भावना से वे संसार त्याग कर पुरी में चैतन्य महाप्रभु के पास पहुँचे। महाप्रभु के निर्देश से पुरी में रह कर रघुनाथ सब समय नाम जप में मग्न रहते थे। उनकी तीव्र तपस्या तथा वैराग्य को देख कर सब लोग आश्चर्यचकित हो जाते थे। अपने शरीर की रक्षा के लिए वे किसी के पास से न कुछ भिक्षा मांगते थे और न देने पर ही ग्रहण करते थे। पुरी में जगन्नाथजी का महाप्रसाद खराब हो जाने पर फेंक दिया जाता है। रघुनाथ रात्रि के समय चुपचाप उसे लाकर पानी से धोकर उसी का सेवन करते थे। एक दिन रघुनाथ जब इस प्रकार महाप्रसाद का सेवन कर रहे थे, उसी समय महाप्रभु अचानक वहां पहुँचे। रघुनाथ के हाथों से महाप्रसाद छीन कर वे स्वयं खाने लगे। रघुनाथ अपने ऊपर महाप्रभु की कृपा दृष्टि को देख कर व्याकुल हो रोने लगे।

महाप्रभु ने अपने भक्तों के समक्ष रघुनाथ की इस प्रकार की कठोर तपस्या की प्रशंसा की। महाप्रभु ने उन्हें शालिग्राम शिला प्रदान की एवं वृंदावन में जाकर तपस्या करने का निर्देश दिया।

त्यागी साधकों के लिए महाप्रभु का निर्देश था— “वैरागी माधुकरी भिक्षा के द्वारा अपने जीवन की रक्षा करे। उसे सब समय नाम जप एवं भजन कीर्तन में लगे रहना चाहिए। वैरागी किसी भी व्यक्ति के पास से कुछ भी कामना न करे। जिह्वा की लालसा से उसे जहाँ-तहाँ नहीं भटकना चाहिए। मातृ जाति को श्रद्धा की दृष्टि से देखे। सब समय उनसे दूर रहे। वैरागी का एकमात्र कर्तव्य है— सब समय नाम जप, संकीर्तन तथा अपने भजन में मग्न रहना।”

छोटे हरिदास नामक एक ब्रह्मचारी ने इन नियमों को थोड़ा भंग किया था, इस कारण महाप्रभु ने उसे त्याग दिया। वैरागी साधकगण इस दृष्टांत को देख कर अपने भजन के नियमों का कठोरता से पालन करने लगे। महाप्रभु स्वयं भी कठोर वैराग्ययुक्त जीवन विताते थे। उन्हें अपने लिए किसी नियम के पालन की आवश्यकता नहीं थी। संन्यास धर्म के आदर्श की स्थापना के लिए वे कठोर संयम एवं नियम से अपना जीवन व्यतीत करते थे।

संकीर्तन के श्रेष्ठ प्रचारक हरिदासजी काफी वृद्ध हो गए थे। वे नित्य नियम से तीन लाख बार नाम जप करते थे। संख्या जप के पूर्ण होने के बाद महाप्रभु द्वारा भेजे गए महाप्रसाद का वे सेवन करते थे। एक दिन महाप्रभु ने आकर देखा कि हरिदासजी नाम जप में मग्न हैं। उन्होंने आज भोजन भी नहीं किया है। महाप्रभु ने हरिदास से कहा— “तुम वृद्ध हो गए हो। इस सिद्ध देह में तुम्हें संख्या जप की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे मन में यदि कोई इच्छा हो तो उसे कहो।” हरिदासजी ने व्याकुल होकर महाप्रभु से कहा— “प्रभो! मैं जानता हूँ तुम शीघ्र ही अपना कार्य समाप्त कर अप्रकट हो जाओगे। मुझे कृपा कर यह वरदान दो कि तुम्हारे अप्रकट होने के पहले मेरा शरीर छूट जावे।”

महाप्रभु ने कहा— “तुम्हारे समान महान भक्त की इच्छा कृपामय भगवान अवश्य पूर्ण करेंगे।”

दूसरे दिन सबेरे महाप्रभु अपने भक्तों को साथ लेकर हरिदासजी की कुटिया में पधारे। वहाँ हरिदासजी के सामने भाव मग्न हो महाप्रभु संकीर्तन करने लगे। भक्तगण हरिदासजी और महाप्रभु को घेर कर संकीर्तन करते हुए परिक्रमा करने लगे। नृत्यरत महाप्रभु के दिव्य रूप का दर्शन करते हुए हरिदासजी ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

महाप्रभु स्वयं भक्त हरिदासजी कि नाममय देह को अपने कंधे पर चढ़ा कर भक्तों के साथ संकीर्तन करते हुए समुद्र के किनारे पहुँचे। वहीं समुद्र के पानी से हरिदासजी की देह

को स्नान करा कर समुद्र के किनारे समाधिस्थ किया गया।

जगन्नाथजी के मंदिर के पास महाप्रसाद की दुकानें हैं। महाप्रभु ने स्वयं हर दुकान से भिक्षा मांग कर हरिदासजी की समाधि में महोत्सव (भंडारा) किया। उस समय भावमग्न महाप्रभु ने कहा— “हरिदासजी के देह त्याग के समय, उनके समाधि कार्य में तथा महोत्सव में जिन्होंने भी अंश ग्रहण किया है— उन सभी को भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य प्रेम की प्राप्ति होगी।”

हरिदासजी के शरीर त्याग देने के बाद से महाप्रभु अपनी कुटिया में सब समय भगवत् लीला दर्शन में तन्मय रहने लगे। भगवत् विरह और मिलन की प्रेम-सुधा में वे सब समय मग्न रहते थे। भाव समाधि की अवस्था में कभी उन्हें भक्तगण जगन्नाथजी के मंदिर के पास पड़े हुए पाते थे। एक समय समुद्र के पानी से भक्तों ने उन्हें निकाला। उस समय की घटनाओं का कुछ-कुछ वर्णन प्रत्यक्षदर्शी भक्तों ने अपने ग्रंथों में किया है।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् के “रसो वै सः” स्वरूप को प्रकाशित किया। भगवान् की लीला मधुरतम है। उनकी लीला में विरह और मिलन दोनों सत्य हैं। शब्द तथा मन के द्वारा इसका वर्णन और इसकी धारणा करना असंभव है। विश्वासपूर्वक सब समय नाम स्मरण एवं संकीर्तन से भक्तगण उनकी कृपा अनुभव कर सकते हैं। इस परम तत्व को उन्होंने “अचिंत्य-भेदाभेद” नाम से कहा है। सच्चिदानंदमय भगवान् की लीला पूर्ण है। इसकी उपासना ही मनुष्य जीवन का प्रधान कर्तव्य है। इस सहज मार्ग का प्रदर्शन श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने जीवन में दर्शाया।

अड़तालीस वर्ष की उम्र तक महाप्रभु ने प्रकट शरीर में लीला की। प्रतिवर्ष की तरह गौड़मंडल (बंगाल) से भक्तगण रथयात्रा के पहले पुरी पहुँचे। इस बार महाप्रभु को उन्होंने अधिक गंभीर और भावमग्न देखा।

एक दिन महाप्रभु भक्तों के साथ बैठ कर श्रीकृष्ण की कथा श्रवण कर रहे थे। अचानक उठ कर वे जगन्नाथजी के मंदिर की ओर दौड़ने लगे। भक्तगण भी भावमग्न महाप्रभु की शरीर की रक्षा के लिए उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। महाप्रभु साधारणतः मंदिर के भीतर नहीं जाते थे। गरुड़स्तंभ के पास खड़े होकर वहीं से वे जगन्नाथजी का दर्शन करते थे। उस दिन महाप्रभु दौड़ कर मंदिर के भीतर रत्नवेदी के पास पहुँच गए। उस समय अचानक मंदिर का दरवाजा अपने आप बंद हो गया। मंदिर के भीतर उस समय केवल जगन्नाथजी का एक सेवक उपस्थित था। भावमग्न महाप्रभु को उसने जगन्नाथजी को आलिंगन करते हुए देखा। जगन्नाथजी को आलिंगन करने के बाद ही चैतन्य महाप्रभु का शरीर विलीन हो गया। आकस्मिक रूप से यह घटना कुछ क्षणों के भीतर ही घट गई।

विस्मित सेवक ने मंदिर का दरवाजा खोला और भक्तों को अपनी आँखों से देखी हुई घटना का वर्णन किया। महाप्रभु के इस प्रकार अप्रकट हो जाने पर भक्तगण विरह में पागल के समान हो गए। कुछ भक्तों ने महाप्रभु के विरह में उसी समय देहत्याग कर दिया। कुछ भक्त हमेशा के लिए पुरी छोड़ कर वृंदावन में जा बसे।

पर अंतरंग भक्तों के समक्ष महाप्रभु अप्रकट न रह सके। जगन्नाथजी में लीन होने के बाद भी उनके दिव्य रूप का दर्शन और आवश्यक निर्देश साधकों को मिलता रहा। इसी कारण उन्होंने अपने ग्रंथों में लिख रखा है—

अद्यपिह सेई लीला करे गौर राय।

कोनो कोनो भाग्यवाने देखि बारे पाय ॥

भावार्थ— आज भी श्री चैतन्य महाप्रभु की दिव्य लीला चल रही है। भाग्यवान साधकों के समक्ष उनकी लीला आज भी प्रकट है।

महाप्रभु के अप्रकट होने के बाद से आज तक असंख्य साधकों एवं महात्माओं ने उनका प्रत्यक्ष दर्शन पाया है। इसी कारणवश महाप्रभु अवतार रूप में जगत्पूज्य हो गए हैं।

महाप्रभु की जन्मभूमि नवद्वीप को वैष्णव श्री वृंदावन की तरह पवित्र मानते हैं। महाप्रभु ने एक बार कहा था — “एक समय ऐसा आयेगा जब पृथ्वी के हर स्थान में मेरे नाम-कीर्तन का प्रचार होगा।” आज पांच सौ वर्ष बाद महाप्रभु की वाणी सफल होती दिखाई पड़ रही है। आज सारे विश्व के लोग नाम संकीर्तन द्वारा भगवत् उपासना की सहज पद्धति का अनुसरण कर रहे हैं।

प्रसिद्ध संत श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी ने स्वरचित “श्री श्री चैतन्य चरितावली” में लिखा है— “चैतन्य चरित अगाध सुस्वादु रस का सागर है। महाप्रभु गौराङ्ग देव के जीवन में सर्वव्यापी प्रेम के सभी लक्षण यथावत् प्रकट हुए हैं। महाप्रभु अपने समय के प्रेमी और भावुक महापुरुषों में सर्वश्रेष्ठ महापुरुष समझे जाते हैं। उनका संपूर्ण जीवन विरहमय है। उनका श्रीविग्रह कृष्ण वियोग का साकार स्वरूप ही बन गया था। किसी भी मनुष्य शरीर में विरहजन्य इतने ऊँचे भाव नहीं देखे गए हैं।”



द्वितीय अध्याय

नाम संकीर्तन की महिमा, कैवल्यष्टकम् तथा श्री श्री चैतन्य महाप्रभु कृत शिक्षाष्टक श्लोकों का भावार्थ

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवत्प्रेम की प्राप्ति के लिए नाम-जप एवं नाम संकीर्तन को मुख्य साधन माना है। इस संबंध में विभिन्न शास्त्रों में विशेष रूप से कीर्तन की महिमा कही गई है। यथा—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्तिह्येको महान गुणः ।

कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं ब्रजेत ॥

(श्रीमद्भागवत् १२-३)

अर्थ— हे राजन! सब दोषों के रहते हुए भी कलियुग में एक महान् गुण है। एकमात्र श्रीकृष्ण कीर्तन से ही माया बंधन से मुक्त हो मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

कृते यत्तु ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मरवैः ।

द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्हरिकीर्तनात् ॥

(श्रीमद्भागवत् १२-४)

अर्थ— सत्युग में ध्यान आदि साधनों द्वारा, त्रेतायुग में यज्ञादि द्वारा, द्वापर युग में परिचर्यादि द्वारा जो कुछ भी प्राप्त होता था, कलियुग में केवल नाम संकीर्तन से उसे प्राप्त किया जा सकता है।

श्री नारदभक्ति सूत्र में भक्ति के साधनों का वर्णन करते हुए कहा गया है—

ॐ अव्यावृत्त भजनात् (पंचम सूत्र-३६)

ॐ लोकेहपि भगवद्गुण श्रवण कीर्तनात् (-३७)

अर्थ— निरंतर भजन द्वारा भगवद्भक्ति उत्पन्न होती है। भक्त लोगों के समीप भगवान् के गुण श्रवण एवं कीर्तन करने से भक्ति का संचार होता है।

भावार्थ— श्रद्धा अथवा अश्रद्धा— किसी भी प्रकार सब समय यदि भगवन्नाम कीर्तन किया जाये तो उससे भक्ति अवश्य प्राप्त होगी। इसमें कोई संशय नहीं है। नाम नामी और

नामदाता एक हैं। इस कारण सब समय नामजप तथा कीर्तन में लगे रहने से भगवत्संग और गुरु एवं भगवत् सेवा दोनों कार्य हो जाते हैं।

जन्म जन्मान्तर के अच्छे संस्कारों के बिना सब समय भगवत् नाम जप नहीं किया जा सकता है, इस कारण भक्तगणों के साथ नियमित रूप से कुछ समय भगवान के गुणों का श्रवण एवं कीर्तन करना चाहिए। इससे समय पर भगवत्कृपा से सब समय भजन करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है।

ॐ स कीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवत्यनूभावयति च भक्तान्
(दशम सूत्र ८०)

अर्थ— श्री भगवान् नाम, रूप, गुण आदि के कीर्तन से सहज में आविर्भूत हो भक्तों पर अपनी उपस्थिति द्वारा कृपा करते हैं। श्री भगवान ने स्वयं कहा है—

नाहं तिष्ठामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।

मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

अर्थ— हे नारद! मैं वैकुण्ठ अथवा योगियों के हृदय में सब समय नहीं रहता हूँ। मेरे भक्तगण जिस स्थान पर कीर्तन करते हैं, वहाँ मैं सब समय उपस्थित रहता हूँ। कीर्तन में उनकी उपस्थिति से भक्तों के प्राण आनंद से भर जाते हैं। विभिन्न भाव के साधक विभिन्न प्रकार से भगवान की उपस्थिति अनुभव करते हैं। आँखों में अश्रु, शरीर में पुलक आदि बाह्य लक्षण भी साधक के शरीर में प्रकट हो जाते हैं।

श्लोक :— हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

भावार्थ— कलियुग में नाम रूप से भगवान अवतीर्ण हुए हैं। केवल हरिनाम कीर्तन एवं जप द्वारा जगत् का उद्धार होगा। इस कारण “हरेर्नाम” शब्द तीन बार कह कर लोगों के मन में विश्वास दिलाया गया है। “केवलम्” शब्द कह कर बार-बार एकमात्र नाम के अभ्यास पर जोर दिया गया है। “नास्त्येव” शब्द तीन बार कहने का अर्थ भगवन्नाम का आश्रय लिए बिना केवल ज्ञान, कर्म अथवा योगाभ्यास द्वारा कलियुग में मनुष्य भगवत्प्राप्ति कभी नहीं कर सकता है।

कैवल्याष्टकम्

मधुरं मधुरेभ्योऽपि मङ्गलेभ्योऽपि मङ्गलम् ।

पावनं पावनेभ्योऽपि हरेर्नामैव केवलम् ॥ १ ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मायामयं जगत् ।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं हरेर्नामैव केवलम् ॥ २ ॥

सः गुरुः स पिता चापि सा माता बांधवोऽपि सः ।

शिक्षयेच्चेत्सदा स्मर्तुं हरेर्नामैव केवलम् ॥ ३ ॥

निःश्वासे न हि विश्वासः कदा रुद्धो भविष्यति ।

कीर्तनीयमतो बाल्याद्धरेर्नामैव केवलम् ॥ ४ ॥

हरिः सदा वसेत्तत्र यत्र भागवता जनाः ।

गायन्ति भक्तिभावेन हरेर्नामैव केवलम् ॥ ५ ॥

अहो दुःखं महादुःखं दुःखाद् दुःखतरं यतः ।

काचार्थं विस्मृतं रत्नं हरेर्नामैव केवलम् ॥ ६ ॥

दीयतां दीयतां कर्णो नीयतां नीयतां वचः ।

गीयतां गीयतां नित्यं हरेर्नामैव केवलम् ॥ ७ ॥

तृणीकृत्य जगत्सर्वं राजते सकलोपरि ।

चिदानन्दमयं शुद्धं हरेर्नामैव केवलम् ॥ ८ ॥

॥ इति कैवल्याष्टकं संपूर्णम् ॥

अर्थ— केवल हरि का नाम ही मधुर से भी मधुर, मङ्गलमय से भी मङ्गलमय और पवित्र से भी पवित्र है ॥ १ ॥

ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब (तृण) पर्यंत सारा संसार मायामय है, केवल एकमात्र हरि का नाम ही सत्य है, नाम ही सत्य है, हरिनाम ही सत्य है ॥ २ ॥

जो सर्वदा केवल हरिनाम स्मरण करना ही सिखलाता है, वही गुरु है, वही पिता है, वही माता है और बंधु भी वही है ॥ ३ ॥

श्वास का कुछ विश्वास नहीं, न मालूम कब रुक जायेगी, इसलिए बाल्यावस्था से ही केवल हरिनाम का ही कीर्तन करना चाहिए ॥ ४ ॥

जहाँ भक्तजन भक्तिभाव से केवल हरिनाम का ही गान करते हैं, वहाँ सर्वदा भगवान् विराजते हैं ॥ ५ ॥

अहो! महान दुःख है!! भयङ्कर कष्ट है!!! सबसे बढ़ कर शोक है। विषय रूपी कांच को प्राप्त कर के हरिनाम रूपी रत्न को बिसार दिया ॥ ६ ॥

केवल एक हरिनाम के ही श्रवण में कान लगाओ, वाणी से बोलो और उसी का निरंतर गान करो ॥ ७ ॥

संपूर्ण जगत् को तृणतुल्य करके, सबके ऊपर केवल एक हरि का शुद्ध सच्चिदानंदधन नाम ही विराजता है ॥ ८ ॥

श्री. श्री चैतन्य महाप्रभु कृत शिक्षाष्टक श्लोक

श्री चैतन्य महाप्रभु ने, नाम-जप तथा संकीर्तन से साधकों को जिन अवस्थाओं की प्राप्ति होती है, उन्हें शिक्षाष्टक नामक आठ श्लोकों में वर्णित किया है। प्रेमभक्ति की साधना में यह सूत्र रूप में माना गया है। श्री चैतन्य-चरितामृत (बंगला) ग्रंथ से यहाँ दिया जा रहा है, जो इस प्रकार है—

श्लोक १ :— चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निं निर्वापणं

श्रेयः कैरव चंद्रिकावितरणं विद्यावधू जीवनम् ॥

आनंदाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं

सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्ण संकीर्तनम् ॥

अर्थ— नाम संकीर्तन चित्त रूपी दर्पण को स्वच्छ करने, संसार रूप महादावाग्नि को

शांत करने, चंद्रमा की ज्योत्स्ना से जिस प्रकार कमल विकसित होता है, उसी प्रकार जीवों के सब साधनों का उत्कर्ष करने में विद्यारूप बधू का प्राण स्वरूप है ; (अर्थात् श्रीकृष्ण भक्ति का प्राण संकीर्तन है) जो आनंदसमुद्र को वर्द्धित करे, जिसके प्रत्येक पद में पूर्णामृत का आस्वादन हो, एवं जो सर्वात्म तृप्तिजनक है (मन आदि को तृप्त करने वाला है)। इस प्रकार से जीवों का परम मंगल करने वाले श्रीकृष्ण संकीर्तन की जय हो।

भावार्थ :— इस श्लोक में परम साधन एकमात्र श्रीकृष्ण संकीर्तन है, यह बताया गया है। संकीर्तन से सब प्रकार के अनर्थों (बाधा, विपत्ति आदि) का नाश होता है। यह सब प्रकार से मंगल कर श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम को बढ़ाता है। संकीर्तन द्वारा चित्त शुद्धि, भक्ति के सब साधनों का विकास एवं संसार की कामना वासना नष्ट हो जाती है। संकीर्तन द्वारा प्रेम के आस्वादन के साथ ही श्रीकृष्ण प्राप्ति एवं भगवत् सेवा रूपी आनंद में साधक निमग्न हो जाता है। इस कारण साधकों को सब समय नाम-स्मरण एवं संकीर्तन करते रहना चाहिए।

श्लोक २ :— नाम्नामकारि बहुधा निज सर्व शक्ति

स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः ॥

एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि

दुर्देवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥

अर्थ— भगवान ने (जीवों के मंगल के लिए) अपने को बहुत से नामों (जैसे राम, कृष्ण, हरि आदि) में अनंत शक्ति से पूर्ण कर प्रचार किया है। इन नामों के स्मरण के लिए समय संबंधी कोई नियम भी नहीं है। ऐसी कृपा करने पर भी मेरा ऐसा दुर्भाग्य है कि ऐसे सहज नाम में भी मेरा अनुराग नहीं उत्पन्न हुआ।

भावार्थ— नाम-साधन सुलभ है। लोगों की रुचि के अनुसार, जीवों के प्रति कृपा करके, ईश्वर के विभिन्न नामों का प्रचार हुआ है। नाम जप एवं कीर्तन खाते, सीते, किसी भी जगह तथा समय, कोई भी कर सकता है। इस प्रकार से किसी भी तरह नाम लेने से सर्व सिद्धि की प्राप्ति होती है ऐसी भगवान की कृपा है। भगवान ने विभिन्न नामों में अपनी सर्वशक्ति को समन्वित कर दिया है। इसी कारण कहा जाता है, नाम, नामी और नामदाता (सद्गुरु) एक है। भगवान की इतनी कृपा होने पर भी मेरा ऐसा दुर्भाग्य है कि भगवन्नाम में मेरा अनुराग उत्पन्न नहीं हुआ।

श्लोक ३ :—

तृणादपि सुनीचेन, तरोरिव सहिष्णुना ।

अमानिना मानदेन, कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

अर्थ— साधक अपने को तृण से भी छोटा माने, वृक्ष से भी ज्यादा सहनशील होवे, स्वयं सम्मान की आशा न रख दूसरों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करे। इस प्रकार का आचरण रखने वाला ही सब समय नाम-कीर्तन करने का अधिकारी होता है।

भावार्थ— साधक उत्तम होते हुए भी अपने को तृण से छोटा माने। वृक्ष के समान सहनशील होवे। वृक्ष जिस प्रकार काटे जाने पर भी कुछ नहीं कहता है एवं सूख कर मर जाता है पर पानी नहीं मांगता। वृक्ष गर्मी तथा वर्षा को सहन करता हुआ छाया एवं फल आदि द्वारा दूसरों की रक्षा करता है। उसी प्रकार वैष्णव को भी सब समय सहनशील, परोपकारी तथा ईश्वर पर निर्भर रहना चाहिए। स्वयं धन, सम्मान, बुद्धि एवं भक्ति आदि गुणों में श्रेष्ठ होते हुए भी इन सबका अभिमान (गर्व) न करे। प्रत्येक जीव में भगवान् विराजित हैं, ऐसी भावना से सबको सम्मान तथा प्रणाम करे। इस प्रकार अपना आचरण रख हर समय भगवन्नाम कीर्तन करता रहे। साधारणतः नाम जप आदि कुछ लोग करते अवश्य हैं पर उसका प्रभाव कुछ विशेष नहीं मालूम पड़ता है। श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी ने कहा है—“इस प्रकार आचरण करते हुए यदि भगवन्नाम जप या कीर्तन किया जाये तब उसी समय कीर्तन का प्रभाव मालूम पड़ेगा।”

श्लोक ४ :— न धनं न जनं न सुंदरीं कवितां वा जगदीश कामये ।

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्ति-रहैतुकी त्वयि ॥

अर्थ— हे जगन्नाथजी! मैं धन, जन, सुंदरी स्त्री, कवीत्व शक्ति यह सब कुछ नहीं चाहता हूँ। मेरी एकमात्र प्रार्थना यही है कि तुम्हारे चरणों में जन्म-जन्म में मेरी अहैतुकी भक्ति बनी रहे।

भावार्थ— साधक को सब समय क्या प्रार्थना करनी चाहिए, यह इस श्लोक में कहा गया है। अन्य सब कामना-वासना को त्याग कर सब समय भगवान् के पास “अहैतुकी भक्ति हो” ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए। अहैतुकी भक्ति का अर्थ शुद्ध निष्काम (कामनाहीन) एवं अविचल भक्ति है।

श्लोक ५ :— अयिनंदतनुज किंकरं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ ।

कृपया तव पादपंकज स्थित धूलिसदृशं विचिन्तय ॥

अर्थ— हे कृष्ण! विषम संसार-समुद्र में पड़े हुए मुझको कृपया अपने पादपद्मों में लगी धूल के समान समझो।

भावार्थ— इस श्लोक में साधक का स्वरूप क्या होना चाहिए, यह कहा गया है। हे कृष्ण! मैं तुम्हारा नित्य-दास होते हुए भी इस विषम भवसागर में अपने कर्मवश पड़ा हुआ हूँ। हे प्रभो! तुम्हारे चरणों में लगी धूल जिस प्रकार चरण छोड़ कर अन्यत्र नहीं रहती, उसी प्रकार मुझे तुम अपने चरणों में आश्रय देकर रखो।

श्लोक ६ :— नयनं गलदश्रुधारया वदनं गदगदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति ॥

अर्थ— हे भगवान! मेरा ऐसा दिन कब होगा— जब तुम्हारा नाम लेने से आँखों से अश्रुधारा, स्वर गदगद् वाक्य से रुद्ध और समस्त देह पुलक से व्याप्त होगी।

भावार्थ— इस श्लोक में प्रेमी भक्त के, नाम लेने से, जो बाह्य लक्षण दिखाई पड़ते हैं, उन्हें बताया गया है। हे कृष्ण! तुम्हारे नाम के लेने से कब मेरी देह में रोमांच, नेत्रों में अश्रु आदि सात्विक विकारों का उदय होगा। भक्त के शरीर में प्रेमोदय से ये लक्षण दिखाई पड़ते हैं। प्रेमधन के बिना मनुष्य जीवन दरिद्र है। इस कारण भक्त की प्रार्थना है— मुझे अपना दास बना कर वेतन के रूप में प्रेमधन दो।

श्लोक ७ :— युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम।
शून्यायितं जगत् सर्वं गोविंद विरहेण मे ॥

अर्थ— गोविंदजी के विरह में मेरा एक निमेष समय एक युग के समान दीर्घ हो गया है। मेरी आँखों से वर्षाधारा के समान अश्रु बहते हैं तथा समस्त जगत् शून्य-सा लगता है।

भावार्थ— इस श्लोक में भगवत्प्रेमी के मन की दशा का वर्णन किया गया है। श्रीकृष्ण के विरहजनित उद्वेग के कारण, क्षण मात्र का अति अल्प समय भी एक युग के समान दीर्घ लगता है। नेत्रों से वर्षा की धारा के समान अश्रु गिर रहे हैं। श्रीकृष्ण विरह से सारा जगत् शून्य-सा लग रहा है। जिस प्रकार तुष (धान का छिलका) के अग्न में पड़ने से प्राण जल्दी नहीं निकलते, उसी प्रकार मेरे जीवन की अवस्था है। भगवान के प्रति अनुराग होने से जगत्

की सब वस्तुएं निःसार मालूम होती हैं।

श्लोक ८ :- आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु माम्

अदर्शनान्मर्महतां करोतु वा।

यथा तथा वा विदधातु लंपटो

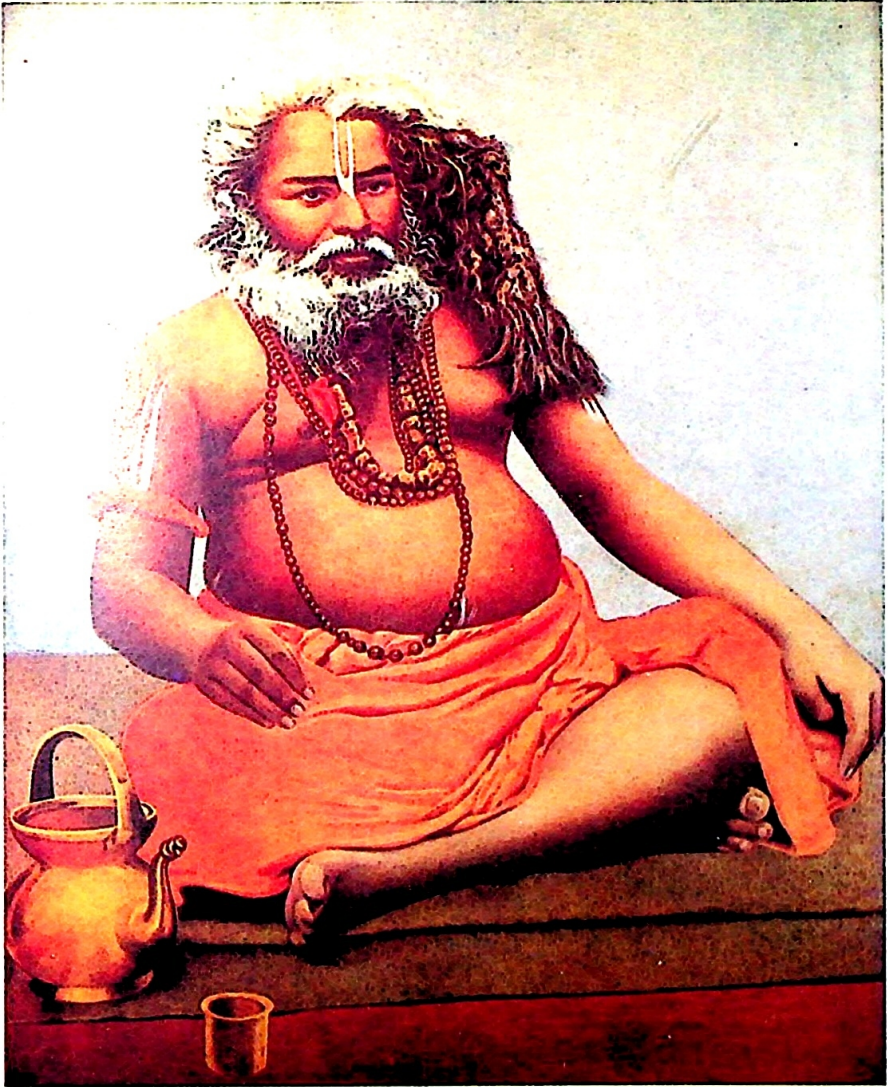
मत्प्राणनाथस्तु स एव ना परः ॥

अर्थ— श्रीकृष्ण अपनी दासी समझ मुझको आलिंगन द्वारा वक्षस्थल से आत्मसात् करें अथवा वे बहुवल्लभ चाहे अदर्शन से मुझे मर्माहत करें, या अन्य रमणी के साथ विहार ही करें, “मेरे प्राणनाथ तो एकमात्र वे ही हैं दूसरा कोई भी नहीं।”

भावार्थ— इस श्लोक में श्रीकृष्ण के चरणाश्रित भक्त (गोपी) के मन के भाव तथा निष्ठा को बताया गया है। गोपी अपने मन की निश्चित धारणा कह रही है— “श्रीकृष्ण मेरे प्रति अनुराग करें— अथवा अदर्शनजनित दुःख से मर्माहत करें; चाहे दूसरी गोपियों के साथ विहार ही करें मेरे तो प्राणनाथ वे ही हैं, दूसरा कोई भी नहीं।” भक्त में अपने ईष्ट के प्रति इसी प्रकार की भावना होनी चाहिए। इस कारण कहा गया है कि गोपी-प्रेम काम-गंध से रहित है। संपूर्ण निष्काम भाव के न आने से, ईश्वर के प्रति साधक में इस प्रकार के उच्च भाव नहीं आ सकते हैं।

साधारणतः लोग कामना के पूर्ण होने पर ही ईश्वर के प्रति श्रद्धा तथा विश्वास रखते हैं। पर भक्त अपनी इच्छा अथवा कामना की पूर्ति न होने पर भी ईश्वर को परम मंगलमय मानते हैं। सब अवस्थाओं में ईश्वर के प्रति उनकी श्रद्धा तथा विश्वास स्थिर रहता है।





सद्गुरु श्री विजयकृष्ण गोस्वामी
जटिने दण्डिने नित्यं लम्बोदर शरीरिणे ।
कमंडलु-निषंगाय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥
(महाभारत - शांतिपर्व)



तृतीय अध्याय

श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी का संक्षिप्त परिचय

श्री श्री चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव सन् १४८६ ई. में बंगाल के नवद्वीप नामक स्थान में हुआ था। बंगाल के सिद्ध वैष्णव महात्माओं के अनुसार शांतिपुर (बंगाल) के श्री अद्वैताचार्य की तीव्र तपस्या एवं कातर प्रार्थना से श्रीकृष्ण भगवान इस गौराङ्ग रूप में संकीर्तन प्रचार के लिए अवतीर्ण हुए थे। श्री चैतन्य महाप्रभु का जीवन वैराग्य से पूर्ण था। उन्होंने कलियुग में भगवन्नाम कीर्तन को प्रेम-भक्ति प्राप्त करने का एकमात्र उपाय बतलाया। भगवत्प्रेम के प्रचार कार्य में श्री अद्वैताचार्य एवं श्री नित्यानन्द महाप्रभु का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। श्री अद्वैताचार्य के वंश में श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी का जन्म हुआ था।

श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के लगभग तीन सौ वर्ष उपरांत वैष्णव धर्म क्रमशः लुप्तप्राय हो रहा था। नाना प्रकार के शास्त्र-विरोधी मार्गों का धर्म के रूप में प्रचार होने लगा। विशेषकर बंगाल में स्थिति ज्यादा खराब थी। एक तरफ मुसलमानों का पाँच-छः सौ वर्षों तक व्याप्त अत्याचार फिर अंग्रेजों की प्रभुत्व-स्पृहा और विलासिता सारे देश की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति को छिन्न-भिन्न करने लगी। इसी समय युग के प्रयोजन के अनुसार बंगाल में परमहंस श्री रामकृष्ण देव एवं श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी का आविर्भाव हुआ।

श्री रामकृष्ण देव ने सर्वधर्म समन्वय एवं सनातन धर्मशास्त्रों का सार सरल एवं सहज भाषा में प्रकाशित किया। मनुष्य मात्र में नारायण है, इस भाव से सबकी सेवा एवं पूजा करने के भाव का उनके मिशन ने प्रचार किया।

श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी ने सनातन धर्मशास्त्रों के प्रचार के साथ-साथ श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित वैष्णव धर्म का पुनर्जागरण किया। मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य भगवत्प्रेम है। इसे केवल सद्गुरु की कृपा से प्राप्त किया जा सकता है। सद्गुरु प्रदत्त शक्तिपूर्ण भगवन्नाम साधन और सदाचार के नियमों का पालन करते हुए मनुष्य भगवत्प्रेम की प्राप्ति कर सकता है। इसी सत्य के प्रचार में उन्होंने अपना जीवन लगा दिया।

श्री अद्वैताचार्य की नवम् पीढ़ी में श्री आनन्दकिशोर गोस्वामीजी हुए। इनकी पत्नी का नाम स्वर्णमयी देवी था। गृह में प्रतिष्ठित श्री श्यामसुन्दर विग्रह की आरती, सेवा, श्रीमद्भागवत् का पाठ इनका नित्य कर्म था। श्रीमद्भागवत् पाठ करते समय इनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा तथा शरीर के रोम-रोम में रक्त की बूंदें उभर आती थीं। इस कारण शांतिपुर और उसके

आस-पास के अनेक स्थानों के लोगों की उनमें अगाध श्रद्धा थी।

प्रथम पुत्र ब्रजगोपाल के जन्म के कुछ दिनों के पश्चात् इनके मन में श्री जगन्नाथजी के दर्शन की तीव्र इच्छा जागृत हुई। लगभग सन् १८३८ ई. की दीवाली के पश्चात् श्री आनंदकिशोर गोस्वामीजी शांतिपुर से दण्डवत् प्रणाम करते हुए श्री जगन्नाथपुरी की यात्रा के लिए निकल पड़े। इनके गले में शालिग्राम शिला बंधी हुई थी। इसका नित्य पूजन करते थे। साथ में इनकी बुआ और एक मौकर था। शांतिपुर से पुरी लगभग साढ़े चार सौ मील की दूरी पर है। उस समय पुरी जाने का मार्ग बहुत कठिन था। इस प्रकार दण्डवत् प्रणाम करते हुए डेढ़ वर्ष बाद सन् १८४० ई. के मई-जून महीने में वे पुरी पहुँचे। आनंदकिशोर श्री जगन्नाथजी का दर्शन कर आनंद विह्वल हो भाव-समाधि में मग्न हो गए। उस समय श्री जगन्नाथजी ने दर्शन देकर कहा— “तुम शांतिपुर लौट जाओ, तुम्हारे पुत्र रूप में मैं आ रहा हूँ।” उनका विचार शेष जीवन पुरी में ही रहने का था, पर इस निर्देश की प्राप्ति के बाद वे पुरी में कुछ दिन रह कर शांतिपुर वापस लौट आए।

२ अगस्त सन् १८४१ ई. की झूलन पूर्णिमा (रक्षाबंधन) के दिन द्वितीय पुत्र विजयकृष्ण का जन्म हुआ। जन्म के पूर्व इनकी माता स्वर्णमयी देवी प्रायः श्री राधा-कृष्ण का दर्शन किया करती थी।

जन्म के बाद पिता ने ज्योतिषियों द्वारा विचार विमर्श किया और कहा— “यह पुत्र भगवत्प्रेमी होगा और भक्ति प्रचार पूर्वक संपूर्ण देश को धन्य करेगा।” विजयकृष्ण की माता जब तक जीवित थीं, उन्होंने पुत्र को पुरी नहीं जाने दिया। वे कहती थीं— “यह जगन्नाथधाम से आया है, वहाँ जाने पर इसका शरीर छूट जावेगा।” सन् १८४४ ई. अक्षय तृतीया के दिन श्रीमद्भागवत् पाठ करते हुए श्री आनंदकिशोर गंभीर समाधि अवस्था में मग्न हो गए। इसी समाधि अवस्था में उन्होंने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। उस समय विजयकृष्ण की उम्र लगभग तीन वर्ष की थी।

बाल्यकाल में विजयकृष्ण बुद्धिमान, सत्यवादी, दयालु एवं निर्भीक स्वभाव के थे। साथ ही बड़े चंचल भी थे। बाल्यकाल की छोटी-छोटी घटनाओं में ही उनके भविष्य की झांकी देखी जा सकती है। इन घटनाओं में से केवल एक घटना का वर्णन यहां दिया जा रहा है।

शांतिपुर की गंगाजी के दूसरी ओर कालना शहर है। कालना में रात्रि के समय प्रायः रामलीला, श्रीकृष्णलीला आदि होती थी। एक बार रात्रि के समय विजयकृष्ण ने अपने कुछ साथियों सहित कालना जाने का विचार किया। शांतिपुर की गंगाजी के घाट से नाविकों की एक नाव को खोल कर अपने साथियों सहित दूसरी ओर कालना चले गए। नाटक आदि

देख कर सुबह होने से पहले, किराये की दूसरी नाव से वापस लौट आए। पहली नाव कालना के घाट में पड़ी रही। इधर शांतिपुर में घाट पर सुबह, गरीब नाव वाला अपनी नाव को न पाकर रोने-चिल्लाने लगा। विजयकृष्ण नाविक की इस दयनीय अवस्था को देख न सके। अपनी मां स्वर्णमयी देवी को उन्होंने रात की सारी घटना बता दी। मां ने नाविक को कुछ रुपये देकर कहा कि “नाव कालना घाट पर पड़ी हुई है, मेरे पुत्र ने अपने साथियों सहित कल यह काम किया है।” दूसरे सभी बालक डर से भाग गए थे, पर निर्भीक एवं दयालु विजयकृष्ण वहीं खड़े रहे। नाविक का हृदय नाव को पाकर आनंद से भर गया एवं वह बालक विजयकृष्ण के लिए ईश्वर से मंगल प्रार्थना करने लगा। बालक विजयकृष्ण भी आनंदित मन से अपने घर लौट आए।

इनका जन्म, संस्कार और शिक्षा सभी दिव्य एवं अनुकूल थे। बाल्यकाल में श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का प्रायः उन्हें स्फुरण होता था। गृहदेवता श्यामसुंदर कभी-कभी प्रकट हो इनके साथ नाना प्रकार की लीलाएं करते रहते थे।

कुलप्रथा के अनुसार सर्वप्रथम माता ने इन्हें दीक्षा दी। उपनयन के बाद शांतिपुर की संस्कृत पाठशाला में इन्होंने अध्ययन किया। तीव्र स्मरण शक्ति के कारण थोड़े ही दिनों में इन्होंने पाठ समाप्त कर लिया। पाठशाला की शिक्षा समाप्त कर विजयकृष्ण संस्कृत कॉलेज में अध्ययन करने लगे। इस समय वेदांत की अद्वैतवाद व्याख्या का अध्ययन करने से ये ईश्वर के निर्गुण ब्रह्म को ही सत्य मानने लगे और ईश्वर के सगुण सच्चिदानंद विग्रह को भ्रम समझने लगे।

इसी समय माता स्वर्णमयी की इच्छा से विजयकृष्ण का विवाह स्व. रामकुमार भादुड़ी की कन्या योगमाया देवी से हुआ। रामकुमार की मृत्यु के बाद इन लोगों की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गई थी। इस कारण विजयकृष्ण की माता स्वर्णमयी ने अपने व्यय पर विवाह कार्य कराया, एवं विवाह के पश्चात् योगमाया की विधवा मां एवं छोटी बहन को भी स्थायी रूप से शांतिपुर ले आई। इन अनुपम कार्य की सभी लोग सराहना करने लगे।

कॉलेज में अध्ययन के समय निर्गुण ब्रह्म विचार द्वारा इनके मन की सरसता नष्ट होने लगी। विजयकृष्ण को मन की इस शुष्क अवस्था में एक दिन दैव वाणी सुनाई दी— “परलोक की चिंता करो।” इस दैव वाणी को सुनने के बाद से इनका मन शांति के लिए और ज्यादा व्याकुल हो गया। उस समय बंगाल में राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज के आचार्य महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर (रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पिता) थे। उनकी निष्ठा, त्याग एवं उपदेशों का प्रभाव शिक्षित लोगों पर बहुत ज्यादा पड़ा। शिक्षित समाज जो धीरे-धीरे विलासिता और ईसाई धर्म की तरफ झुक रहा था, उसे रोकने में ब्रह्म समाज ने काफी काम

किया। ब्रह्म समाज निर्गुण ब्रह्म की उपासना को केवल सत्य मानता था। महर्षि देवेन्द्रनाथ के उपदेशों से प्रभावित होकर इन्होंने ब्रह्मधर्म ग्रहण कर लिया।

ब्रह्मधर्म ग्रहण करने से शांतिपुर के ब्राह्मण समाज ने इन्हें जाति से अलग कर दिया। पर सत्य एवं शांति की चाह में इन्होंने अपना लक्ष्य नहीं छोड़ा। ब्रह्म उपासना द्वारा मन में इन्हें काफी शांति मिलती थी।

इसी समय ये कलकत्ते के मेडिकल कॉलेज में भर्ती हो गए। अंतिम वर्ष की परीक्षा के पहले ही पढ़ाई छोड़ कर ब्रह्मधर्म के प्रचार कार्य में लग गए।

उस समय केशव चंद्र सेन और विजयकृष्ण गोस्वामी ब्रह्म समाज के मुख्य प्रचारक माने जाते थे। प्रचार कार्य के साथ-साथ ये चिकित्सा कार्य भी करते थे। गरीब लोगों को दवाई के साथ-साथ आहार भी खरीद कर दे आते थे।

इसी समय एक बार गंगा नदी में प्रबल बाढ़ आई हुई थी। गरीब मरीज के लिए घर से दवाई लेने के लिए कोई भी न आ सका। मरीज के कठिन रोग की चिंता कर, अंत में ये स्वयं दवाई लेकर निकल पड़े। कोई भी केवट नाव से नदी पार करने को राजी न हुआ। अंत में वे दवाई की शीशी लेकर, गंगाजी की प्रबल तरंगों को तैरते हुए पार कर के मरीज के घर पहुँचे। इस प्रकार अपनी जान की बाजी लगा कर उन्होंने मरीज की सेवा की। इस प्रकार के त्याग, साहस एवं दयालु हृदय के कारण लोग इन्हें अत्यंत श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे।

ब्रह्म समाज के प्रचार कार्य में इन्हें अपने परिवार सहित प्रायः अनाहार, अपमान आदि कठिन क्लेशों का सामना करना पड़ा। ईश्वर पर निर्भर रह, इन्होंने प्रचार कार्य जारी रखा। वे उस समय दिन भर प्रचार एवं मरीजों की सेवा कार्य में अपना समय बिताते थे और रात को ज्यादा समय गंभीर ध्यान में व्यतीत करते थे। इस कठिन परिश्रम का प्रभाव उनके शरीर पर पड़ा। हृदय में तीव्र यंत्रणा के साथ कभी-कभी मूर्च्छा आने लगी। डाक्टरों की सलाह पर कुछ दिनों तक इन्हें विश्राम लेना पड़ा, पर दवाई प्रायः आजीवन लेनी पड़ी।

ब्रह्म समाज में काफी वर्षों तक साधना करने के बाद भी इनके मन की अशांति एवं अभाव दूर न हुए। ध्यान में आनंद अवश्य मिलता था, पर वह स्थायी नहीं होता था। इस मानसिक अशांति के समय एक दिन उन्हें फिर दैवी निर्देश मिला— “किसी प्रकार के बंधन (संकीर्णता) के भीतर रहने से धर्म लाभ नहीं होगा।” ब्रह्म समाज के भीतर रह कर मन, वचन और कर्म द्वारा सत्य का अनुसरण करना उन्हें इसके बाद असंभव लगा। इस समय से ही विभिन्न संप्रदायों के महात्माओं के साथ इन्होंने सत्संग प्रारंभ किया। इनमें दक्षिणेश्वर के परमहंस रामकृष्ण देव, नवद्वीप के सिद्ध वैष्णव श्री चैतन्यदासजी, कालना के प्रसिद्ध महात्मा

श्री भगवानदासजी, काशी के श्री तैलंग स्वामीजी तथा गया के श्री गंभीरनाथजी प्रमुख हैं। इस समय कुछ गुप्त रूप से रहने वाले महात्माओं के दर्शन एवं आशीर्वाद ने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने में इनकी बहुत सहायता की।

ब्रह्म समाज गुरु की दीक्षा एवं साकार मूर्ति की उपासना स्वीकार नहीं करता था। इन महात्माओं के सत्संग से इन्हें साकार रूप पर विश्वास हुआ। बिना सद्गुरु की दीक्षा के ईश्वर प्राप्ति कभी नहीं हो सकती है, इस सत्य पर इन्हें दृढ़ विश्वास हो गया। इन महात्माओं ने इन्हें विभिन्न प्रकार से साधना में सहायता दी, पर मंत्र दीक्षा नहीं दी।

“सद्गुरु निश्चित है, समय पर सद्गुरु की प्राप्ति अवश्य होगी” ऐसा कह कर इन महात्माओं ने आश्वासन दिया।

सद्गुरु की प्राप्ति के लिए विभिन्न स्थानों में वे व्याकुल हृदय से भटकने लगे। कई बार जीवन से निराश होकर आत्महत्या करने भी गए। उस समय अलौकिक रूप से, किसी न किसी प्रकार से, महात्माओं ने दर्शन देकर इन्हें आत्महत्या करने से रोका और कहा—“सद्गुरु की प्राप्ति समय होने पर अवश्य होगी, धैर्य रख कर शुभ समय की प्रतीक्षा करो।” अंत में विभिन्न स्थानों में सद्गुरु की खोज करते हुए, गया (विहार प्रांत) के आकाशगंगा नामक पहाड़ में महात्मा रघुवरदासजी के आश्रम में पहुँचे। महात्माजी हनुमानजी के उपासक थे। उनके स्नेहपूर्ण व्यवहार से आकर्षित होकर, वहीं रह कर साधन-भजन में अपना समय बिताने लगे।

एक दिन कुछ ग्वाल-वालों ने आकर कहा कि पर्वत के ऊपर एक महात्माजी पधारे हैं। दर्शन के लिए उनके पास पहुँचते ही गोस्वामीजी का हृदय श्रद्धा और दिव्य आनंद से भर गया। कुछ समय बाद उन्हें महात्माजी के निर्देश से लौट आना पड़ा। दूसरे दिन सवेरे व्याकुल हृदय से वे फिर उनके पास पहुँचे और चरणों में गिर कर रोने लगे। महात्माजी ने प्रेमपूर्वक उन्हें अपनी गोद में खींच लिया। महात्माजी ने अपना परिचय देते हुए कहा—“मानसरोवर (हिमालय) से तुम्हें दीक्षा देने के लिए आया हूँ।” विजयकृष्ण जी ने पूछा—“मानसरोवर तो यहां से बहुत दूर है, यहाँ आप किस प्रकार पहुँचे?” महात्माजी ने समझाया—“योगी के लिए यह कुछ भी कठिन नहीं है। वे स्थूल देह के पांच तत्वों को पृथ्वी के पांच तत्व में मिला कर, केवल चैतन्य आत्मा के सहारे चाहे जहां भी जाकर स्थूल देह धारण कर सकते हैं।” इसके बाद उन्होंने विजयकृष्ण को शक्तिसंचार पूर्वक दीक्षा दी। मंत्र को सुनते ही विजयकृष्ण के शरीर में अष्ट सात्विक विकार प्रकट हो गए। गुरु को प्रणाम करते हुए वे मूर्च्छित से हो गए। बाह्य ज्ञान आने पर उन्होंने देखा कि महात्माजी चले गए हैं। किसी प्रकार नीचे रघुवरदासजी के आश्रम में आकर, वे समाधिस्थ हो गिर पड़े। इस

समय रघुवरदासजी ने इनके शरीर की रक्षा की। ग्यारह दिन तक लगातार वे इस प्रकार समाधिस्थ हो पड़े रहे। आकाशगंगा पहाड़ का वातावरण मनोरम देख, यहीं रह कर वे तीव्र तपस्या एवं नाम-साधन में लग गए। समय-समय पर गुरुजी प्रत्यक्ष दर्शन देकर आवश्यक निर्देश भी देते रहते थे।

बाद में विजयकृष्ण ने अपने गुरुजी का परिचय देने हुए कहा है— “इनका नाम स्वामी ब्रह्मानंद परमहंस है। ये महात्मा जी नानकपंथी, पंजाबी ब्राह्मण वंश के थे। बाद में वैदिक मत से इन्होंने साधना की। अंत में श्री चैतन्य महाप्रभु से दीक्षा पाकर, उनकी कृपा से इन्होंने दिव्य भगवत्प्रेम प्राप्त किया। इनकी देह काफी प्राचीन है।” लगभग तीन-चार महीने बाद गुरुजी के निर्देश से विजयकृष्ण संन्यास लेने काशी में स्वामी हरिहरानंद सरस्वतीजी के पास पहुँचे। ब्रह्म समाज में विजयकृष्ण ने यज्ञोपवीत त्याग दिया था। इस कारण संन्यास देने के पूर्व स्वामीजी ने इनसे प्रायश्चित्त करवाया। संन्यास के बाद इनका नाम स्वामी अच्युतानंद सरस्वती रखा गया, पर वे अपने पूर्वाश्रम के नाम (श्री विजयकृष्ण गोस्वामी) से ही ज्यादा परिचित हुए।

संन्यास के बाद आकाशगंगा पहाड़ में इन्होंने कुछ दिन और बिताये। दीक्षा के बाद से गुरु स्वामी ब्रह्मानंदजी की कृपा इन पर विशेष रूप से हुई। प्रायः वे इन्हें दर्शन देकर आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होने में सहायता करते थे। शास्त्रों में जिन दुर्लभ अवस्थाओं का वर्णन है, उनका गुरुजी की कृपा से इन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव किया।

इसी समय एक दिन गुरुजी ने दर्शन देकर कहा— “बेटा! तुम संसार त्याग मत करना। गृहस्थ आश्रम में रह कर प्राचीन ऋषियों की तरह अपना त्यागमय जीवन जीवों के कल्याण में लगाओ। अभी कुछ दिनों तक तुम्हें ब्रह्म समाज में और रहना पड़ेगा। समय आने पर समाज का बंधन अपने आप छूट जायेगा।” गया से कलकत्ता, ब्रह्म समाज में लौट आने के कुछ दिनों के भीतर (२६ नवंबर सन् १८८३ ई.) वे परमहंस श्री रामकृष्ण देव का दर्शन करने दक्षिणेश्वर गए। श्री रामकृष्ण ने उन्हें देखते ही कहा— “विजय, तुमने अपना घर ढूँढ़ लिया। देखो, दो साधु विचरण करते हुए एक शहर में पहुँचे। आश्चर्यचकित हो उनमें से एक शहर, बाजार, ईमारतें आदि देख रहा था। इसी समय दूसरे से उसकी भेंट हो गयी। तब दूसरे साधु ने कहा— “तुम शहर देख रहे हो, तुम्हारा डेरा-डण्डा कहां है?” पहले साधु ने कहा— “मैं पहले घर की खोज कर के, सामान आदि रख कर निश्चिंत होकर निकला हूँ, अब शहर का रंग-ढंग देख रहा हूँ।” इसीलिए तुमसे (विजय से) मैं पूछ रहा हूँ— क्या तुमने अपना घर ढूँढ़ लिया? (मास्टर आदि से)— देखो इतने दिनों तक विजय का फौवारा दबा हुआ था, अब खुल गया है। ईश्वर जिनसे जो (वाह्य) कर्म कराते हैं, वे उसे करते रहें।

(विजय से) अब तुम्हारा समय हो गया है। अब तुम कहो— “मन तू देख और मैं देखूँ, कोई दूसरा न देखे।” (विजय के प्रति) “भगवान की शरण में जाकर अब लज्जा भय यह सब छोड़ो। मैं अगर कीर्तन में नाचूँ, तो लोग मुझे क्या कहेंगे, यह सब भाव छोड़ दो। प्रेम का होना बड़ी दूर की बात है। प्रेम चैतन्य देव को हुआ था। ईश्वर पर जब प्रेम होता है तब संसार, अपना शरीर जो इतना प्यारा है, वह भी याद नहीं रहता है। वह कह कर श्री रामकृष्ण गाने लगे—

“न मालूम कब वह दिन होगा जब हरि नाम कहते हुए मेरी आँखों से धारा बहेगी। संसार वासना दूर होकर शरीर पुलकित हो जायेगा।” (श्री रामकृष्ण कथामृत से)

उस समय ब्रह्म समाज में विजयकृष्ण की उच्च भाव अवस्था को देख कर विभिन्न संप्रदाय के लोग आने लगे।

कलकत्ता ब्रह्म समाज में केशव सेन से इनका कुछ मतभेद हो गया। इस कारण ढाका (पूर्वी बंगाल) जाकर गोस्वामीजी ने ब्रह्म समाज का कार्य शुरू किया।

इस समय इन्हें साधना में अलौकिक दिव्य दर्शन आदि होने लगे। गुरुजी के निर्देश से इन्होंने दीक्षा देनी प्रारंभ की।

इनकी दीक्षा प्रणाली में कुछ विशेषता थी। कोई भी व्यक्ति दीक्षा प्रार्थी होने पर, अपने गुरुजी से प्रत्यक्ष अनुमति के मिलने पर ही ये दीक्षा देते थे। कई भाग्यवान लोगों ने दीक्षा के समय इनके गुरु स्वामी ब्रह्मानंद परमहंसजी का दर्शन भी पाया था।

शिष्यों को सदाचार के नियमों के साथ अजपा-साधन बताते थे। हर श्वास-प्रश्वास के साथ नाम जप करना तथा शरीर शुद्धि के लिए प्राणायाम के अभ्यास का भी उपदेश दिया जाता था। ब्रह्म के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों को ये सत्य मानते थे। इस कारण इनका उदार एवं असांप्रदायिक भाव, ब्रह्म समाज के लोग ग्रहण न कर सके। संकीर्तन में इनकी समाधि अवस्था को देख कर ब्रह्म समाज के लोग इनका उपहास करने लगे। इस कारण ढाका के पास गेंडारिया नामक जंगल में शिष्यों ने अलग से आश्रम की स्थापना की। इस आश्रम में आकर गोस्वामीजी ने भगवत् दर्शन तथा सिद्धि प्राप्त की। इनकी सिद्ध देह में अपूर्व दिव्य कांति की छटा दिखाई देने लगी।

इस समय इन्होंने आकाशवृत्ति व्रत धारण किया था। अवाचित रूप से जो भी वस्तुएं आतीं, उन्हीं वस्तुओं को भिक्षा रूप से ग्रहण किया जाता था। गेंडारिया आश्रम में इनके साथ पत्नी योगमाया, पुत्र योगजीवन तथा दो कन्याएँ भी रहती थीं। कुछ मुमुक्षु साधक तथा कुछ गृहस्थ लोग भी प्रायः आश्रम में रहते थे। इन सबका भरण-पोषण आश्रम की तरफ से

होता था। आश्रम के लिए स्थायी आय का कोई साधन नहीं था। ईश्वर पर पूर्ण रूप से निर्भर रह कर साधकों को अपना जीवन बिताना पड़ता था।

धीरे-धीरे सिद्ध महात्मा रूप में इनकी ख्याति चारों तरफ फैल गयी। इनके पास विभिन्न संप्रदाय के लोग साधन ग्रहण करने के लिए आने लगे। दीक्षा प्राप्त करने के अधिकारी के संबंध में उनका कहना था— “यह साधन संपूर्ण अहैतुक भगवान का दान है। जिसके ऊपर उनकी कृपा होती है, उन्हें गुरुजी के प्रत्यक्ष निर्देश से दीक्षा दी जाती है।” उस समय हरिद्वार के स्वामी भोलानंद गिरि, वृंदावन के रामदास काठिया बाबाजी, गोरखपुर के गंभीरनाथजी आदि सिद्ध महात्माओं ने इन्हें सद्गुरु रूप में मान्यता दी। श्री रामकृष्ण देव ने भी कुछ लोगों को दीक्षा लेने के लिए इनके पास भेजा था।

आश्रम में इनकी दिनचर्या घड़ी के समय से नियंत्रित थी। हर कार्य के लिए एक निश्चित समय निर्धारित था। सवेरे प्रातः कृत्य के पश्चात् चाय पीकर गोस्वामीजी अपनी कुटिया में बैठते थे। उस समय श्री चैतन्य चरितामृत (बंगला), श्री गुरुग्रंथसाहिबजी, गोस्वामी तुलसीदासजी कृत श्री रामचरितमानस तथा श्रीमद्भागवत् आदि ग्रंथों का पाठ दिन के ग्यारह बजे तक चलता था। पाठ की समाप्ति के बाद वे स्नान, आहार कर आश्रम में एक आम के वृक्ष के नीचे बैठ कर भजन करते रहते थे। उस समय विभिन्न स्थानों से दर्शनार्थी लोग आते थे। जिज्ञासुओं को उस समय आवश्यक प्रश्नों का उत्तर देते थे। कुछ समय महाभारत का पाठ भी उस समय नित्य होता था। संध्या के समय नित्य आरती एवं संकीर्तन होता था। संकीर्तन में इनके नेत्रों से अश्रु, शरीर में पुलक आदि सात्विक लक्षणों को देख कर लोग अपने को धन्य मानते थे। भाव-समाधि की अवस्था में कभी-कभी इनकी जटाएँ सिर पर खड़ी हो जाती थीं। संकीर्तन के बाद शिष्यों के साथ एक साथ बैठ कर कुछ देर ध्यान करते थे। रात को साढ़े नौ बजे भोजन के बाद अपने भजन कुटीर के आसन पर समाधिस्थ होकर सारी रात व्यतीत करते थे। शेष रात्रि में थोड़ी देर के लिए शयन कर, भोर होते ही उठ कर प्रभातो कीर्तन प्रारंभ करते थे। अंत के चौदह वर्षों में उन्होंने निद्रा त्याग दी थी।

प्रत्यक्षदर्शी शिष्यों ने इस समय की अलौकिक घटनाओं का वर्णन ‘श्री श्री सद्गुरु संग’ (लेखक— ब्रह्मचारी कुलदानंद) नामक ग्रंथ में कुछ-कुछ किया है। उसमें से दो-चार घटनाओं का वर्णन यहां किया जा रहा है।

जिस आम के वृक्ष के नीचे गोस्वामीजी बैठते थे, उसके पत्तों से प्रायः मधुवर्षण होता था। कभी-कभी उनकी जटाओं से भी मधुक्षरण होता था। दिव्य सुगंध से चारों तरफ का वातावरण पवित्र रहता था। उनके भजन कुटीर के भीतर एक विल में एक विषधर नाग रहता था। उसे प्रायः दूध दिया जाता था। रात के समय समाधिस्थ अवस्था में जब

गोस्वामीजी अपनी कुटिया में बैठे रहते थे, तब वह सर्प कभी-कभी बिल से निकल कर जटाओं के सहारे सिर पर चढ़ कर बैठ जाता था। इस संबंध में किसी शिष्य के पूछने पर उन्होंने कहा था— “जब प्राणायाम की क्रिया स्वाभाविक रूप से सुषुम्ना में चलती है, तब बहुत मधुर ध्वनि निकलती है। जिससे आकर्षित होकर सर्प सिर पर चढ़ता है। शिवजी के सिर पर जो सर्प है, वह इसी कारण रहता है। वह कोई कल्पना नहीं है। यह सर्प कभी अनिष्ट नहीं करता है, वरन् इससे साधना में बहुत सहायता मिलती है।” विभिन्न ग्रंथों के पाठ के समय प्रायः जिस दृश्य का वर्णन होता था, उसका चित्र उनके शरीर एवं कपड़े पर उभर आता था। शरीर के कर, चरण तथा शिराओं में ओंकार स्वरूप प्रणव मंत्र की अभिव्यक्ति होती थी, कभी लय होती थी, फिर अभिव्यक्ति होती थी। इस संबंध में गोस्वामी जी से पूछने पर उन्होंने कहा था— “वेद, स्मृति, पुराण, तंत्र आदि सभी शास्त्र सत्य हैं। साधना करते-करते शास्त्रों के देवता अपना स्वरूप प्रकाशित करते हैं। शास्त्रों में कल्पना या भ्रम आदि कुछ भी नहीं है। शास्त्रों में जो विभिन्नता दिखाई पड़ती है, वह विभिन्न अधिकारियों के अनुसार बतलाई गई है। जब साधक के प्रति श्वास-प्रश्वास में चौबीसों घंटे नाम स्वाभाविक रूप से चलता है, उस समय नाम के प्रभाव से शरीर क्रमशः नाममय हो जाता है। साधक की शिरा, उपशिराओं में, रक्त कणिकाओं में, तथा शरीर की त्वचा आदि में नाम व्याप्त हो जाता है, यहाँ तक कि शरीर के ऊपर भी नाम की अभिव्यक्ति होती रहती है। अज्ञा-साधन की सिद्धि उसी समय होती है।” आश्रम के साधना कुटीर में गोस्वामीजी ने अपने हाथों से निम्न उपदेश लिख रखे थे, जो इस प्रकार हैं :-

ॐ श्री कृष्ण चैतन्याय नमः ।

- (१) ऐसा दिन नहीं रहेगा।
- (२) आत्मप्रशंसा मत करो।
- (३) परनिंदा मत करो।
- (४) अहिंसा परमो धर्मः।
- (५) सब जीवों पर दया करो।
- (६) शास्त्र और महात्माओं पर विश्वास रखो।
- (७) शास्त्र और महात्माओं के आचरण से जो मेल न खाए उसे विषवत्
- (८) अहंकार से बड़ा शत्रु कोई नहीं है।

इनकी अलौकिक शक्ति, विपत्ति के समय भक्तों को अभयदान देती एवं रक्षा करती

थी। एक बार महेंद्रनाथ नामक एक शिष्य ढाका से कलकत्ता (बड़ाबाजार) किसी काम से आया। भूख लगने पर अपने पास जो पैसा बचा था उससे दूध पीने का विचार किया। उसी समय एक साधु ने आकर भिक्षा मांगी। महेंद्रनाथ ने बचे हुए सब पैसों का दान कर दिया। ढाका लौटने के साथ ही गोस्वामीजी ने कहा— “उस दिन बड़ाबाजार में साधु को अपना पैसा देकर बहुत अच्छा किया। मैंने ही उस साधु को भेज कर पैसा लेकर तुम्हें दूध नहीं पीने दिया। उस दिन दूध पीने से तुम्हें हैजा हो जाता।” महेंद्रनाथ अपने ऊपर गुरुजी की कृपा दृष्टि देख कर विस्मित हो गए।

किरणचंद्र (दरवेशजी) दीक्षा प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो गोस्वामीजी से मिलने कलकत्ता आए। यहाँ आने पर मालूम हुआ कि गोस्वामीजी वृंदावन चले गए हैं। इसे सुन कर उन्हें यह लगा कि “मुझ जैसे साधारण लोगों को गोस्वामीजी से दीक्षा कभी नहीं मिलेगी, अतः देह त्याग देना ही ठीक रहेगा।” ऐसा सोच कर गंगाजी (जगन्नाथघाट) में आत्महत्या करने के लिए जल में उतरे। उसी समय गोस्वामीजी ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर किरणचंद्र को वृंदावन आने के लिए कहा। गोस्वामीजी का दर्शन पाने के बाद किरणचंद्र वृंदावन पहुँचे। वहीं उन्हें दीक्षा मिली।

गोस्वामी जी की प्रेरणा से उनके शिष्यों में से विपिनचंद्र पाल, सतीशचंद्र मुखर्जी, अश्विनीकुमार दत्त, मनोरंजन गुह आदि ने अपना जीवन देश के स्वाधीनता संग्राम में लगा दिया। भारत के स्वाधीनता संग्राम में बंगाल के इन लोगों का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है।

वृंदावन में गोस्वामीजी लगभग एक वर्ष रहे। इस समय इन्होंने ब्रजमंडल की परिक्रमा की तथा राधाकुंड में कुछ दिनों तक रहे। उसी समय उन्हें दिव्य वृंदावन की मधुर लीलाओं का दर्शन हुआ।

एक दिन राधाबाग (वृंदावन) में एक वृक्ष के नीचे बैठ कर वे ध्यान कर रहे थे। अचानक उस वृक्ष ने महात्मा का रूप धारण कर उन्हें कुछ निर्देश दिया। दूसरे दिन वृंदावन के प्रसिद्ध वैष्णव महात्मा श्री गौर शिरोमणी से उन्होंने इस घटना का वर्णन किया। उस समय पास ही बैठे हुए वैष्णव ने इसे पागलपन कह कर उनका उपहास किया। अन्य दिन जब वे राधाबाग गए, उस समय उस वृक्ष रूपी महात्मा ने फिर से प्रकट होकर कहा— “उस अविश्वासी वैष्णव की तीन दिन के भीतर मृत्यु होगी।” गोस्वामीजी अपने विरोधियों का भी अहित सोच नहीं सकते थे। अतः उन्होंने महात्माजी से बार-बार उस वैष्णव के प्राणों की रक्षा की भीख मांगी। पर महात्माजी ने सत्यवस्तु की अमर्यादा करने वाले उस धर्मद्रोही वैष्णव को क्षमा नहीं किया। तीसरे दिन उस वैष्णव की मृत्यु हो गई।

गोस्वामीजी कहते थे— “श्री वृंदावन अप्राकृत धाम है। यहाँ की रज की प्राप्ति के

लिए विदेही वैष्णव महात्मा वृक्ष, लता आदि देह धारण कर विराजित हैं।” इस कारण यहाँ वृक्ष आदि काटना अपराध है। इस स्थान का माहात्म्य यदि उपलब्ध करना हो, तो लगभग एक वर्ष तक इन नियमों का पालन करते हुए रहो—

- (१) हिंसा को त्याग दो।
- (२) परनिंदा मत करो। ब्रजवासियों के आचरण की आलोचना मत करो।
- (३) ब्रज की महिलाओं को श्रद्धा की दृष्टि से देखो।
- (४) नित्य किसी न किसी मंदिर में जाकर विग्रह को साष्टांग प्रणाम कर दर्शन करो।
- (५) अनिवेदित वस्तु का आहार मत करो।
- (६) वृथा समय मत विताओ। सब समय साधन-भजन (नामजप, धर्मग्रंथों का पाठ एवं नाम कीर्तन आदि) लेकर रहो।

इन नियमों का पालन करते हुए कुछ दिन भी यदि वृंदावन धाम में रहा जाय, तो कुछ न कुछ विशेषता का अनुभव अवश्य होगा।

वृंदावन धाम में रहते समय, उनके पूर्वाश्रम की पत्नी योगमाया देवी ने शरीर छोड़ दिया। गोस्वामीजी के निर्देश से पुत्र योगजीवन ने माँ की कुछ अस्थियों को ले जाकर ढाका में समाधि मंदिर बनाया एवं नामब्रह्म की स्थापना की।

श्री नामब्रह्म की पूजा पद्धति शास्त्रों में गुप्त रूप से थी। गोस्वामीजी ने सर्वप्रथम इसका प्रचार किया। श्री नामब्रह्म के संबंध में श्री चैतन्य एवं श्री नित्यानंद महाप्रभु ने एक दिन दर्शन दे, निम्न आदेश दिया— “कलियुग में एकमात्र नामब्रह्म पूजा एवं आचार्य पूजा हरेक गृह में प्रतिष्ठित होगी। नामब्रह्म की पूजा में सभी वर्ण एवं जाति के लोगों का अधिकार है। नामब्रह्म के निकट निवेदित अन्न महाप्रसाद के तुल्य माना जाता है। निम्न वर्ण के लोगों द्वारा अर्पित अथवा छूने पर भी ब्राह्मण आदि उच्च वर्ण के लोग इसे ग्रहण कर सकते हैं। यदि उच्च वर्ण के लोग इस महाप्रसाद को ग्रहण न करें तो अपराध होगा। केवल भक्ति भाव से दिन में एक बार प्रणाम करने से ही नामब्रह्म की पूजा हो जाती है। किसी कारणवश यदि मंदिर का दरवाजा दो-चार दिन बंद भी रह जाय तो कोई सेवा-अपराध नहीं होता है।” गोस्वामीजी ने कहा है कि कलियुग में लोगों की दुर्बलताओं को देख कर श्री महाप्रभु इस सहज व्यवस्था को दे गए हैं। एक शिला, कागज अथवा कपड़े पर नामब्रह्म लिख कर पूजा के कमरे में रखने से ही इसकी प्रतिष्ठा हो जाती है। कोई विधि या अनुष्ठान की आवश्यकता

नहीं है।

श्रीमद्भागवत् में प्रस्तर, दारुमय, लौहमय, अंकित, वालूमय, लिपिवद्ध, मनोमयी मूर्ति की पूजा का उल्लेख मिलता है।

नामब्रह्म मंत्र निम्न है—

ॐ हरिः

नामब्रह्म

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

कलियुग में केवल नाम जप तथा संकीर्तन यज्ञ द्वारा भगवत् उपासना होती। इसके सिवाय अन्य कोई भी उपाय नहीं है। श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रकाशित इसी सत्य का गोस्वामी जी ने प्रचार करते हुए कहा— “एक समय ऐसा आयेगा जब इस नाम की तरंग भारत के एक प्रांत से दूसरे प्रांत तक प्रवाहित होगी एवं एक दिन सारा विश्व मृदंगमय (संकीर्तनमय) हो जावेगा।” वृंदावन से वापस गेंडारिया आश्रम में कुछ दिन रहने के बाद सन् १८६३ ई. में गोस्वामी जी प्रयाग के कुंभ मेले में गए। मेले में इनकी छावनी का दरवाजा सबके लिए खुला था। कोई भी प्रार्थी विमुख नहीं होता था। अन्न, वस्त्र आदि द्वारा यथासाध्य उनकी सेवा की जाती थी। उस समय उन्होंने एक कठिन व्रत ले रखा था। रोज जो भी सामान आये, शाम तक उसे समाप्त कर देना पड़ता था। दूसरे दिन के लिए कुछ भी भोजन सामग्री या रुपया आदि जमा कर के रखना निषिद्ध था। उस समय उनके साथ लगभग सौ लोग थे। अतिथि, साधु, संन्यासी आदि हमेशा आते रहते थे। इस प्रकार ईश्वर पर पूर्ण रूप से निर्भर रह कर उन्होंने अनुपम दृष्टांत दिखाया। इस समय इनके पास से हजारों विभिन्न सांप्रदाय के महात्माओं ने अजपा-साधन की दीक्षा ली।

गोस्वामीजी ने कुछ भाग्यवान गृहस्थ शिष्यों को भी आकाशवृत्ति का व्रत दिया था। इस व्रत के मुख्य नियम इस प्रकार हैं—

- (१) भगवान पर निर्भर रहना। जीविका के लिए नौकरी आदि अथवा अर्थ के विनिमय में कुछ भी कार्य नहीं करना।
- (२) किसी के पास से कुछ भी नहीं मांगना।
- (३) अपना अभाव किसी भी प्रकार से दूसरों को नहीं बताना।

(४) केवल वृद्ध, शिशु और रोगी के लिए आवश्यकतानुसार कर्ज ग्रहण कर सकते हैं।

गोस्वामीजी की कृपा से उनके शिष्यों में से काफी लोगों ने भगवान की दिव्य अप्राकृत लीलाओं का दर्शन पाकर अपना जीवन धन्य किया।

कुंभ मेले से वापस आकर कलकत्ता, शांतिपुर, नवद्वीप इत्यादि स्थानों का भ्रमण करते हुए ये कुछ दिनों के लिए फिर वृंदावन गए थे। वृंदावन से कलकत्ता होकर ढाका गेंडारिया आश्रम में पहुँचे। उस समय गेंडारिया आश्रम में श्री अद्वैताचार्य तथा श्री नित्यानंदजी की जन्मतिथि के उपलक्ष्य में उन्होंने “धूलट महोत्सव” मनाया। इस महोत्सव में संकीर्तन के साथ नगर भ्रमण तथा अतिथि की सेवा मुख्य रूप से की गई थी। इस प्रकार का संकीर्तन ढाका आदि स्थानों में पहले कभी भी नहीं हुआ था। इस कारण नित्य हजारों की संख्या में लोग दर्शन करने आते थे। आश्रम में सबके रहने और भोजन का प्रबंध था। याचकों को उनकी इच्छानुसार वस्त्र, कंबल आदि भी दिया जाता था। उस समय संकीर्तन में जो दिव्य भावों का प्रकाश हुआ वह दुर्लभ था। नित्य संकीर्तन में जो मधुर वातावरण उत्पन्न होता था वह लोगों को श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य संकीर्तन की याद दिलाता था।

गेंडारिया आश्रम के आस-पास उनके कुछ शिष्य जमीन लेकर मकान बना कर स्थायी रूप से रहने लगे। इसी समय एक दिन गोस्वामीजी ने कहा— “देखो, आज यहाँ कितना कीर्तन, आनंद हो रहा है, पर एक दिन इसी स्थान पर रक्त बहेगा। यहाँ मुसलमानों का राज्य होगा।” सन् १८६५ ई. के लगभग उन्होंने यह कहा था। बंगाल के विभाजन के बाद जब मुसलमानों ने हिंदू लोगों को मारना प्रारंभ किया, तब गोस्वामीजी की वाणी सबको याद आई। उस स्थान को मुसलमानों ने अब नष्ट कर दिया है।

गोस्वामीजी ढाका से कुछ दिनों के बाद कलकत्ता आए एवं यहाँ कुछ महीने रहे। उस समय गोस्वामीजी के दिव्य भावों से आकर्षित हो, विभिन्न स्थानों से दर्शनार्थी लोग आने लगे। यहीं पर स्वामी विवेकानंद, मास्टर महाशय, नाग महाशय आदि श्री रामकृष्ण देव के शिष्यगण इनसे मुलाकात करने आए थे। स्वामी विवेकानंदजी के निमंत्रण पर वे बेलूरमठ भी गए थे। कलकत्ते के विशिष्ट लोग जैसे जस्टिस गुरुदास बनर्जी, रमेश मित्र, ब्रजेन्द्रनाथ शील, कालीकृष्ण ठाकुर आदि लोगों ने इनके सत्संग का लाभ उठाया।

सन् १८६७ ई. में गोस्वामीजी ने जगन्नाथपुरी जाना तय किया। उस समय शिष्यों को उनकी माताजी की बात याद आ गई कि “पुरी जाने से विजयकृष्ण का शरीर छूट जावेगा।” इस आशंका से भक्तगण चिंतित हो गए। कुछ लोगों ने उन्हें रोकने की चेष्टा भी

की। पर वे श्री जगन्नाथजी के दर्शन के लिए इतने ज्यादा व्याकुल हो गए कि अंत में भक्तों को पुरी जाने की व्यवस्था करनी ही पड़ी।

उस समय कलकत्ते से जहाज अथवा स्टीमर से कटक तक जाना पड़ता था। कटक से नौ मील की दूरी पर बारंग स्टेशन है, वहाँ से पुरी तक ट्रेन लाइन थी।

कलकत्ते से स्टीमर से जाने की व्यवस्था हुई। स्टीमर छूटने के पूर्व शिष्यों ने कहा—“हमलोग इतने आनंद में थे, अब हमलोग क्या करेंगे?” गोस्वामीजी ने उत्तर दिया—“नित्य अपने घर में नाम-संकीर्तन, एवं गुरु वैष्णव और अतिथि की सेवा करना।” यही कलकत्ता छोड़ने के पूर्व इनका अंतिम उपदेश था। शिष्यों से उन्होंने व्याकुल होकर कहा—“तुम लोग मुझे आशीर्वाद दो, जिससे मुझे जगन्नाथधाम की प्राप्ति हो।” इसे सुन कर शिष्यगण रोने लगे।

उन्होंने जगन्नाथपुरी पहुँच कर श्री जगन्नाथजी, गंभीरामठ, सिद्धबकुल, टोटा गोपीनाथ, लोकनाथ महादेवजी आदि प्रमुख स्थानों का दर्शन किया। शिष्यों को इन्होंने अपने पितृपुरुषों के उद्देश्य से महाप्रसाद द्वारा पिंडदान करने का निर्देश दिया। शास्त्रों में गया तथा जगन्नाथजी में पिंडदान देने का विशेष निर्देश है। पितृपुरुषों के आशीर्वाद से गृहस्थ लोगों का बहुत मंगल होता है। पुरी में वे स्वयं श्री जगन्नाथ जी का महाप्रसाद ग्रहण करते थे, एवं शिष्यों को भी नित्य महाप्रसाद लेने के लिए कहा करते थे। उनका कहना था—“महाप्रसाद अप्राकृत वस्तु है। यह उच्छिष्ट अथवा स्पर्श दोष से दूषित नहीं होता है। नित्य इसके भक्षण से प्रारब्ध का क्षय हो जाता है। यहाँ रहने वालों का नित्य कर्म है— प्रथम समुद्र में स्नान, द्वितीय श्री जगन्नाथजी का दर्शन, पूजन तथा तृतीय महाप्रसाद का भोजन।” पुरी में इनके निवास स्थान पर नित्य संकीर्तन प्रारंभ हो गया। इनके कुछ शिष्य भी साथ में आए थे। एक वर्ष से कुछ अधिक ये पुरी में थे। गोस्वामीजी कहा करते थे, “धन का सदुपयोग यथार्थ प्रयोजन में व्यय करना ही है। जो बच जाए उस धन को ईश्वर की धरोहर समझ कर रखो। यदि ईश्वर किसी दुःखी या जरूरतमंद को सामने ला दे, तो रखा हुआ धन तुरंत दे दो। जो धर्म को चाहते हैं, वे धन पर आसक्ति न रखें।” इस समय श्री जगन्नाथजी का निर्देश पाकर इन्होंने दानयज्ञ चालू किया। ब्राह्मण, साधु-संतों, श्री जगन्नाथजी के सेवकगणों तथा गरीब लोगों को अन्न एवं वस्त्रों का दान दिया गया। कोई भी प्रार्थी उस समय खाली हाथ न गया। इस कारण पुरी में इनकी ख्याति “जटिया बाबा” नाम से फैल गई।

इसी समय जिलाध्यक्ष की तरफ से पुरी में वानर-वध चालू किया गया। रास्ते में जहाँ-तहाँ बंदरों को देखते ही गोली से मार दिया जाता था। इस पवित्र तीर्थ में इस निष्ठुर कार्य का इन्होंने प्रतिवाद किया। जब जिलाध्यक्ष ने इनके प्रतिवाद को नहीं माना, तब अपने

कुछ शिष्यों को कलकत्ता भेज कर विशिष्ट नागरिकों की सहायता से, कठिन प्रयत्न कर अंग्रेज गवर्नर द्वारा वानर-वध बंद करवाया। धार्मिक लोगों ने उनके कार्य की बहुत सराहना की।

जगन्नाथपुरी में दूर-दूर से लोग गोस्वामीजी का दर्शन करने आने लगे। नित्य संकीर्तन में अश्रु, पुलक आदि महाभाव के साथ समाधि अवस्था का दर्शन कर लोग अपने को धन्य समझने लगे।

पुरी में “जटिया बाबा” की इस प्रतिष्ठा को देख कर दो-एक आश्रम के महंतगण एवं कुछ स्थानीय लोगों के मन में ईर्ष्या जग गई। उन लोगों ने गोस्वामी जी के प्राणनाश की योजना बनाई। एक व्यक्ति के द्वारा महाप्रसाद के लड्डू के साथ तीव्र जहर मिश्रित कर इनके हाथ में दिया गया। उस समय इनके पास कोई सेवक नहीं था। सर्वज्ञ गोस्वामी जी हाथ में लड्डू लेते ही समझ गए कि इसमें जहर मिश्रित है। यह भी उनसे अज्ञात नहीं रहा कि विधि-निर्दिष्ट इस जहर का भक्षण कर इन्हें देह त्याग देना है। इसी बीच उस दुरात्मा ने कहा—“महाप्रसाद प्राप्त होते ही ग्रहण करना चाहिए। शास्त्रों में ऐसा निर्देश है।” इसे सुन कर उन्होंने विषमिश्रित वह महाप्रसाद खा लिया। अपना कार्य समाप्त होते ही वह दुरात्मा भाग गया। थोड़ी देर में ही वे बेहोश हो गए। कुछ देर बाद होश आने पर, शिष्यों के पूछने पर उन्होंने सारी घटना बतलाई। उत्तेजित शिष्यों को उन्होंने शांत किया और कहा—“जिन लोगों ने मुझे विष खिलाया, उनके प्रति मैं असंतुष्ट नहीं हूँ। भगवान उनका कल्याण करे। तुम लोग भी उनके प्रति दुर्भाव या हिंसाभाव मत रखो।” विष के प्रभाव से दिनों दिन उनका शरीर क्षीण एवं दुर्बल होता गया। विषपान के एक माह के बाद जून १८६६ ई. में रात नौ बजे ५८ वर्ष की आयु में जगन्नाथ धाम में उन्होंने नित्यलीला में प्रवेश किया। उस समय सबको माता स्वर्णमयी की बात याद आई—“विजय, जगन्नाथधाम से आया है, वहाँ जाने पर इसका शरीर छूट जावेगा।” इनके पार्थिव शरीर को शिष्यों ने नरेंद्रसरोवर (पुरी) के किनारे जमीन में समाधिस्थ किया। बाद में वहाँ भव्य मंदिर बनाया गया, जो आज भी “जटिया बाबा का समाधि मंदिर” नाम से पुरी प्रसिद्ध दर्शनीय स्थानों में है।

गोस्वामी जी ने देहत्याग के कुछ दिन पूर्व कहा था—“तुम लोगों ने जो साधन पाया, वह देव-दुर्लभ वस्तु है। भगवान की विशेष कृपा से यह मिलता है। श्री चैतन्य महाप्रभु के समय जो लोग दीक्षा प्रार्थी थे, केवल उन्हें ही दीक्षा दी गई है। जिन्हें दीक्षा दी गई है, वे सब श्री चैतन्य महाप्रभु के समय उनके दिव्य संकीर्तन में उपस्थित थे।”

एक समय किसी भक्त के पूछने पर उन्होंने कहा था—“श्री चैतन्यमहाप्रभु द्वारा प्रचारित संकीर्तन का कार्य अभी चालू हुआ है, भविष्य में ऐसा समय आयेगा, जब विश्व मृदंगभ्य (संकीर्तनमय) हो जायेगा।” अर्थात् केवल नाम संकीर्तन से ही लोग भगवत् उपासना करेंगे

एवं दिव्य प्रेम के अधिकारी होंगे। आज भी कुछ-कुछ भाग्यवान लोग संकीर्तन में उनकी उपस्थिति का अनुभव अथवा दर्शन पाते हैं।

श्री गोस्वामी जी द्वारा प्रदर्शित मार्ग अजपा-साधन कहलाता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने कुछ प्रमुख शिष्यों को यह साधन दिया था। गुरु नानकदेवजी, कबीरदासजी आदि महात्माओं ने इसी प्रणाली को अपना कर सिद्धि प्राप्त की है। इनके लिखे गए ग्रंथों में अजपा-साधन के संबंध में बहुत-सी बातें मिलती हैं। अजपा-साधन की श्रेष्ठता इन महात्माओं ने गद्गद् होकर वर्णित की है।

सद्गुरु जिसे इस साधन को देने का निर्देश करें, वही शक्ति संचारपूर्वक यह साधन दे सकता है। सद्गुरु के अतिरिक्त अजपा-साधन की प्रणाली जानने का कोई दूसरा उपाय नहीं है। शिष्य की क्रमिक उन्नति के अनुसार समयानुकूल उपदेश देकर सद्गुरु उसे अग्रसर करते हैं। यह निर्देश सद्गुरु प्रत्यक्ष भाव से अथवा सूक्ष्म शरीर में जाकर भी दे सकते हैं। गुरु के शरीर त्याग देने पर भी सद्गुरु अपने शिष्य के समक्ष स्थूल रूप धारण कर आवश्यक निर्देश दे सकते हैं।

जिस पद्धति का अनुसरण करने से, अपने आप सब समय जप होता रहे, उसे अजपा-साधन कहते हैं। इसमें इच्छापूर्वक जप नहीं करना पड़ता है। श्वास-प्रश्वास के क्रम से, सद्गुरु प्रदत्त शक्तिशाली मंत्र के जप के अभ्यास से, वह श्वास के साथ मिल जाता है और तब पुनः इच्छा पूर्वक जप करने की आवश्यकता नहीं रहती है। गोस्वामीजी ने यह साधन अपनी गुरु परंपरा से प्राप्त किया था।



चतुर्थ अध्याय

श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी के उपदेशों का संग्रह

शास्त्र

(१) ऋषियों ने अपनी साधना से जिन तत्त्वों को प्रत्यक्ष किया, भावी पीढ़ी धर्म प्राप्ति कर सके, इस उद्देश्य से उन सत्त्वों को वे शास्त्रों में हमारे ही कल्याण के लिये लिख गए हैं। अतः ऋषि प्रणीत शास्त्र वाक्य अश्रुत और सत्य हैं। शास्त्र का अवलंबन या अनुसरण करने से अवश्य ही लाभ है। इसमें किसी प्रकार की आशंका या भय नहीं है। इन्हें पालन करने से ऋषियों का आशीर्वाद प्राप्त होता है।

(२) धर्म के विषय में नई वाणियों को देने की शक्ति प्राचीन ऋषियों में ही थी। यदि शास्त्रों में कही कोई बात असंभव या अप्रामाणिक जान पड़े, तो मन में विचार करो कि तुम अपनी अज्ञानता के कारण शास्त्र का यथार्थ मर्म समझ नहीं पा रहे हो। स्वयं न समझ सकने पर भी शास्त्र के विरुद्ध कदापि तर्क मत करो। मंत्रद्रष्टा ऋषियों के साथ अन्य किसी साधु या महापुरुष की तुलना न करो।

(३) अनेक प्रकार के ग्रंथ पढ़ने से ज्यादा उपकार नहीं होता है। प्रथम अवस्था में चुने हुए कुछ ग्रंथों को पढ़ना चाहिए। जैसे महाभारत, रामायण, श्रीमद्भागवत, गीता, अध्यात्म रामायण, भक्तमाल, श्री चैतन्य चरितामृत, श्री गुरुग्रंथसाहबजी आदि। इन ग्रंथों में से अपनी रुचि के अनुसार पाठ करना चाहिए। जब शास्त्रों में थोड़ी रुचि हो तभी वेद, उपनिषद, स्मृति, तंत्र तथा पुराण पाठ करने से उपकार होता है।

(४) वेद और उपनिषद् में विशेष ज्ञान न रहने से हिंदू शास्त्रों को समझना कठिन है। अष्टादश पुराण, रामायण, महाभारत इन ग्रंथों के बिना गहन अध्ययन के धर्म के जटिल प्रश्नों की मीमांसा नहीं हो सकती है। इस कारण सब शास्त्रों का बिना अध्ययन किए शास्त्र के संबंध में आलोचना कर अपना मत प्रकट करना, अज्ञानता का लक्षण है।

(५) ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम एवं अथर्व वेद एक हैं। शिक्षा के लिए चार भाग किए गए हैं। चारों वेदों के पढ़ने में ३६ वर्ष समय आवश्यक है। इस कारण संपूर्ण वेद का अध्ययन नहीं कर सकते हैं। कोई एक भाग, कोई दो भाग अध्ययन कर, उस वेद के आचार्य माने जाते हैं। इसी कारण “वेदा विभिन्नाः” कहा गया है। वास्तव में वेद विभिन्न नहीं हैं। जैसे मनुष्य के हाथ के साथ पैर विभिन्न हैं, पर शरीर एक है। यदि संपूर्ण वेदवेत्ता कोई रहे तो उनके

पास वेद विभिन्न नहीं है।

(६) जिज्ञासु व्यक्ति के श्रद्धावान होने पर ही आचार्य उपदेश दें। श्रद्धा के साथ शास्त्र और गुरुवाक्य में विश्वास रखना होगा। इस प्रकार न चलने से उपदेश देने से भी कोई उपकार नहीं होगा।

(७) शास्त्र और सदाचार को त्याग कर यदि कोई अन्य पथ से ब्रह्मलोक भी ले जाय तो नहीं जाना चाहिए। कारण, दो-एक व्यक्ति पूर्व जन्म के अच्छे संस्कार के कारणवश अन्य पथ से भी सद्गति पा सकते हैं। पर जो मुमुक्षु साधक साधन पथ में नया प्रवेश कर रहा है, उसकी अधोगति होगी। यह ऋषिवाक्य है।

(८) जिस गृह में रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत् विद्यमान है, वहां सब तीर्थों का निवास है।

(९) गुरुनानकदेव ने बार-बार मन मुख अर्थात् शास्त्रहीन पथ की अपकारिता दर्शायी है।

सदाचार

(१) संत, महात्माओं के आचरण को सदाचार कहते हैं। शास्त्र और महात्माओं के आचरण में जो बातें नहीं मिलती हैं, उन्हें विषवत् त्याग दो।

(२) गंगास्नान, तीर्थ पर्यटन, एकादशी उपवास, पूर्णिमा, अमावस्या आदि व्रतों का पालन करने से शरीर शुद्ध होता है। सत्व गुण बढ़ जाता है।

(३) वाक्य, कार्य और चिन्ता से सदा सत्य का अनुसरण करो। जिसका उद्देश्य सत् हो, वही सत्य है।

(४) परनिंदा मत करो। मनुष्य में चाहे कितने ही दोष हों, उसमें भी उसके गुण ही देखने की कोशिश करो। किसी के गुणों की व्याख्या या प्रशंसा करने से अपना हृदय सरल होता है। अपने पाप, ताप दूर हो जाते हैं और ईश्वर उपासना का कार्य भी हो जाता है, (कारण ईश्वर हर प्राणी में हैं)।

(५) साधक जीवन में सबसे पहले श्रद्धा होनी चाहिए। शास्त्र और महात्माओं के प्रति विश्वास आने पर साधु संग का अधिकार होता है। उसके बाद सात्विक जीवन के प्रति रुचि जागृत होती है। फिर भाव तथा भक्ति और अंत में प्रेम आता है। भाव को वृक्ष, भक्ति को पुष्प तथा प्रेम को मीठा फल समझो।

(६) सब प्राणियों के प्रति दया भाव रखो। गरीब, दुःखी, अभावग्रस्त की यथासाध्य सहायता करो।

(७) सेवा शब्द का अर्थ है जिस प्रकार अपना प्रयोजन होने पर उसे पूर्ण करने की इच्छा होती है उसी प्रकार दूसरे का प्रयोजन यदि हमारे मन में हो, तब उसे पूर्ण करने के लिए व्याकुलता होती हो। माता शिशु की सेवा इसी भाव से करती है। इस भावना को रख कर यदि सेवा की जाय तभी सेवा शब्द का प्रयोग उचित है।

(८) दूसरों की सेवा करना परम धर्म है। सेवा करने से अभिमान नष्ट होता है। सेवा करते हुए यदि झंझट मालूम पड़े तब वह सेवा नहीं कहलाती है।

(९) कलियुग में भगवान का नाम लेना और दान देना यही मुख्य साधन हैं। भय, स्नेह, लज्जा, सम्मान, वंश मर्यादा तथा प्रत्युपकार की आशा से दान वास्तविक रूप से दान नहीं है। दान देने के बाद यदि अनुताप हो तो वह फिर दान नहीं कहलाता है।

(१०) जिस दिन कुछ भी दान न दिया जाय वह दिन “बन्ध्या-दिन” है। ऐसा मनु ने कहा है।

(११) जिस प्रकार से प्यास लगने पर अति व्यग्रता से जलपान करते हैं, उसी प्रकार वास्तविक दाता, दान के पात्र को देखते ही दान देने के लिए व्याकुल हो जाता है। दान देकर उसके आनंद की सीमा नहीं रहती है।

(१२) संपूर्ण स्वत्व त्याग ही दान कहलाता है। जिसे दान दिया जाय, वह यदि उस वस्तु को नष्ट कर दे, तो भी दाता को कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है।

(१३) शास्त्र में है— गया में यदि विधिवत् पिंडदान दिया जाय तो प्रेतात्मा की सद्गति होती है।

(१४) जगन्नाथजी के महाप्रसाद के नित्य सेवन से प्रारब्ध खंडन होता है।

(१५) गृहस्थ को प्रत्येक दिन निम्न पांच यज्ञ करना आवश्यक है। इससे उसका कल्याण होता है—

(१) पितृ यज्ञ — श्राद्ध, नित्य तर्पण आदि।

(२) ऋषि यज्ञ — धर्मशास्त्रों का पाठ आदि।

(३) देव यज्ञ — होम, पूजा, तीर्थयात्रा आदि।

(४) नृ-यज्ञ — अतिथि सत्कार आदि।

(५) भूत यज्ञ — कीट, पतंग, पशु, पक्षी, वृक्ष आदि की सेवा भोजन, जल आदि द्वारा करना।

आहार संयम और ब्रह्मचर्य

(१) जो कुछ भी खायें-पीयें, प्रभु को निवेदित कर के ही ग्रहण करें। अनिवेदित वस्तुएं कभी भी ग्रहण न करें। शुद्ध, सात्विक और स्वपाक भोजन ग्रहण करना सर्वोत्तम है। भोजन का संयम, अधिक मीठा न खाना और सादा भोजन लेने का अभ्यास करना चाहिए।

(२) साधक को रात में स्वल्प भोजन के बाद तीन-चार घंटे सोना चाहिए। अधिक समय तक तथा नरम शैया पर सोना ठीक नहीं है। दूसरों के उपयोग में लाए गए वस्त्र आदि काम में न लें। अधिक निद्रा से तमोगुण बढ़ता है। साधक को रात दो बजे उठ कर साधना का अभ्यास करना चाहिए। इस समय अनेक महापुरुष सूक्ष्म रूप से विचरण करते हैं एवं साधनारत व्यक्ति को आशीर्वाद देकर सहायता करते हैं।

(३) आहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः। (छांदोग्य उपनिषद्)

अर्थ—आहार शुद्ध होने से चित्त शुद्ध होता है। चित्त शुद्ध होने से भगवान का निरंतर स्मरण होता है।

(४) आहार के दोष से ही सारे विकार और रोग उत्पन्न होते हैं। हर ग्रास में नाम करते हुए, निवेदित अन्न ग्रहण करना चाहिए। श्राद्ध-अन्न, जूठा भोजन, शराब आदि नशीली वस्तुएं, मांस, अंडा, प्याज आदि तामसी वस्तुओं को कभी भी ग्रहण न करो। जिस प्रकार का अन्न ग्रहण करोगे, उसी प्रकार शरीर और मन तैयार होगा। भगवान को पाने की इच्छा रखने वाले साधक को सात्विक आहार करना अत्यंत आवश्यक है। इससे वीर्य रक्षा, एकाग्रता, सभी बातें सहज हो जाती हैं।

(५) श्राद्ध-अन्न प्रेत की जूठन होता है। उसे कभी मत खाओ। जिस तिथि में मंत्रपाठ करके प्रेत को बुला कर पिण्डदान किया जाता है, उस दिन उस घर में पानी तक मत पियो। पिता-माता का जूठा प्रसाद है, उसे खाने से कल्याण होता है। स्त्रियाँ अपने सास-ससुर और स्वामी की जूठन प्रसाद समझ कर ग्रहण कर सकती हैं।

(६) प्याज को हिंदू शास्त्रों में गो-मांस तुल्य कहा गया है। यह तमोगुणी और शरीर तथा मन के लिए उत्तेजक है। योग अभ्यास करने वालों को इसके स्पर्श जनित भोजन को भी नहीं खाना चाहिए।

(७) वीर्य की रक्षा और सत्यपालन नहीं करने से योग की दुर्लभ अवस्थाएं प्राप्त नहीं हो सकती हैं। शरीर और मन से सर्वदा पवित्र रहना चाहिए।

(८) भोजन के अनियम से साधक को होने वाले दर्शन आदि रुक जाते हैं। तमोगुणी व्यक्ति के साथ बैठ कर भोजन करने पर हानि होती है। भावदूषित, दृष्टिदूषित और स्पर्शदूषित

भोजन के खाने से तरह-तरह के उपद्रव (ब्रह्मचर्य की हानि आदि) होते हैं तथा चित्त में विकार उत्पन्न होते हैं। इस विषय में साधक को बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। इसी कारण देवताओं को मंदिर में भोग आदि द्वारा बंद कर के लगाया जाता है। पवित्रता पूर्वक भोजन करने से साधना सहज हो जाती है।

(६) गोस्वामीजी एक समय भ्रमण करते हुए हिमालय पर वर्ष से ढके हुए एक स्थान पर एक महापुरुष के पास पहुँचे। देश का कल्याण किस प्रकार होगा? यह प्रश्न पूछने पर उन्होंने कहा— “देश के विद्यार्थियों एवं युवकों में सत्य और वीर्यरक्षा के विना देश का कल्याण नहीं हो सकता है।” आज इसके अभाव में देश की दुर्दशा बढ़ रही है।

(१०) लोग शक्ति लाभ के लिए बिना कुछ किए यहां-वहां दौड़ते हैं। शक्ति लाभ करना कुछ भी नहीं है। ईश्वर को चाहने वाले के पीछे तो शक्ति स्वयं फिरती रहती है। साधक उसकी ओर देखता भी नहीं है। यदि शक्ति लाभ करना चाहते हो, तो एक वर्ष कार्य, मन और वाक्य से सत्य तथा वीर्य की रक्षा करो। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ, तुम्हें वाक्-सिद्धि की प्राप्ति होगी।

(११) साधक को स्त्री जाति से सावधान रह कर उनके पैरों की ओर देखना और उनके प्रति मातृभाव रखना चाहिए।

(१२) बिना सत्य के पालन के वीर्यरक्षा कभी नहीं हो सकती है।

(१३) ब्रह्मचर्य का पालन ही सब साधनों का मूल (जड़) है। गुरु के अनुगत हुए बिना वह नहीं हो सकता है। एकमात्र सद्गुरु की कृपा से ही वास्तविक ब्रह्मचर्य प्राप्त होता है। उसकी प्राप्ति हो जाने पर फिर कुछ भी साधना बाकी नहीं रहती है।

सद्गुरु और शक्ति संचार

(१) वेदवेत्ता और ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्म में जिन्होंने शांतिलाभ किया है, ऐसे गुरु का आश्रय लो। ब्राह्मण, वासनाहीन, सब रिपु जिनके नष्ट हो गए हैं, शरीर से निर्मल, अंगहीन न हों, श्रीकृष्ण के चरणारविंद में जिन्होंने परा-भक्ति लाभ किया हो, ऐसे सद्गुरु का आश्रय लेना चाहिए।

(२) साक्षात् देहधारी से दीक्षा ग्रहण न करने से परमपिता परमेश्वर के दर्शन का अधिकार नहीं मिलता है। गुरु तत्व का ज्ञान हो जाने पर सब कुछ हो जाता है। गुरु सच्चिदानंद विग्रह रूप हैं। अग्नि तो सर्वत्र है पर उसे प्राप्त करने के लिए दीपक या चूल्हे का सहारा लेना पड़ता है। इन स्थानों में अग्नि विशेष रूप से प्रकट है। इसी प्रकार ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है, पर उसे पाने के लिए सद्गुरु का आश्रय लेना पड़ता है। सद्गुरु में ही ईश्वर की चित्शक्ति का प्रकाश

देख कर ईश्वर की पूजा की जाती है।

(३) मोक्षार्थियों को गुरु दक्षिणा नहीं देनी पड़ती। सद्गुरु दीक्षा देकर शिष्य को सभी प्रकार से अपना लेते हैं। फिर गुरु दक्षिणा कौन दे? गुरु की आज्ञापालन कर के ही उनका अनुगत बना जा सकता है।

(४) सद्गुरु का आदेशपालन ही गुरुसंग है। गुरु की देह, गुरु नहीं है। गुरु की देह न रहे, तो भी गुरु सदा रहते हैं। गुरु तो ईश्वर की अनंत शक्ति है। उसे गुरु की देह के अनुरूप देख पहचान पाते हैं। गुरु अग्नि की तरह सर्वव्यापी है। लेकिन जहाँ प्रगट हो, उसे वहाँ हम देख पाते हैं।

(५) जीवात्मा और परमात्मा एक ही देह में अवस्थित है। मातृगर्भ से भूमिष्ठ होते ही, भगवान की माया शक्ति द्वारा जीवबद्ध हो जाता है। सद्गुरु शिष्य के भीतर कृपा दृष्टि (शक्ति संचार) से माया मेघ अपसारित कर देते हैं।

(६) प्रदीप में तेल और रूई के रहने पर भी, वह अपने आप नहीं जलता है। एक जलते हुए प्रदीप के द्वारा उसे जलाना पड़ता है। उसी प्रकार शक्ति प्रत्येक मनुष्य के भीतर रहने पर भी वह जागृत नहीं हो पाती है। किसी प्रबल शक्तिसंपन्न सद्गुरु की शक्ति के संसर्ग से वह जग जाती है। इसे ही शक्ति संचार कहते हैं। मनुष्य साधना द्वारा अपने आप इसे नहीं जगा सकता है। बुद्धदेव के समान यदि कोई होवे, तभी यह अपने आप जग सकती है।

(७) शक्ति का जागरण न होने से साधन भजन का फल स्थायी नहीं होता है।

भावार्थ— साधारण गुरु में यह क्षमता नहीं होती है, इस कारण प्रबल शक्ति संपन्न सद्गुरु की आवश्यकता पड़ती है।

(८) मंत्र केवल शब्द नहीं है। मंत्र के देवता को, सद्गुरु मंत्र में समन्वित कर, शिष्य को प्रदान करते हैं। परमात्मा और मंत्र एक हैं। जिस मंत्र को जप कर के किसी महात्मा ने सिद्धि लाभ किया हो, उसे सिद्ध मंत्र कहते हैं। जब तक शिष्य का उद्धार न हो, तब तक गुरु का भी उद्धार नहीं होता है। आवश्यकता पड़ने पर शिष्य के उद्धार के लिए गुरु को जन्म भी ग्रहण करना पड़ता है।

(९) जैसे गाय को ले जाने के लिए ग्वाला बछड़े को सामने गोद में उठा कर चलता जाता है। गाय दूसरी ओर देखना छोड़ कर, बछड़े के पीछे-पीछे चलने लगती है। उसी प्रकार भगवान को पाना चाहो तो उनके चरणाश्रित भगवत्भक्तों का आश्रय लो। जो ईश्वर को आत्म समर्पण कर चुका है, भगवान उसके लिए सदा चिंतित रहते हैं।

नाम जप

(१) सब शास्त्रों में कहा गया है— “कलियुग में नाम-जप एकमात्र उपाय है।”

(२) एकमात्र नामजप से ही सब पाप, संशय जब नष्ट होगा तब विश्वास अपने आप होगा। प्रति श्वास में नाम जप करना एकमात्र उपाय है।

(३) हृदय की शुष्क अवस्था या अविश्वास के समय नाम लेने से वह वृथा नहीं होता है। कड़वी दवाई विरक्ति के साथ सेवन करने पर भी फायदा करती है। जिस प्रकार अग्नि में हाथ देने पर वह अवश्य जलेगा।

(४) ईष्टमंत्र का जीभ से उच्चारण मत करो। चेष्टा अथवा ईशारे के सहारे भी नाम मत बताओ। शुद्ध अवस्था हो अथवा अशुद्ध अवस्था हो, सब समय नाम जप करते रहो। जिस प्रकार श्वास हर समय चलती रहती है, उसी प्रकार हर श्वास में सद्गुरु प्रदत्त नाम जप करते रहो।

(५) व्याकुल भाव से ईश्वर के चरणों में प्रार्थना करनी चाहिए। चलते, फिरते, हर कार्य करते समय, हर पांच-सात मिनटों में, कुछ क्षणों के लिए, उन्हें स्मरण करो। वे सर्वदा साथ हैं, मुझे बहुत प्यार करते हैं, प्रति क्षण न जाने किस प्रकार मुझ पर दया कर रहे हैं; यह स्मरण कर बार-बार उन्हें प्रणाम करो। इस प्रकार हर काम में स्मरण करते रहने से उनकी कृपा शीघ्र मिलती है।

(६) देव स्थानों में जाकर विग्रह पर एकाग्र दृष्टि से देखते हुए, एकाग्र मन से नामजप करते रहने पर असली देवता के दर्शन हो सकते हैं। एक मात्र सद्गुरु प्रदत्त शक्तिपूर्ण नाम जप द्वारा तैंतीस करोड़ (सभी) देवी-देवताओं की पूजा हो जाती है।

(७) श्वास-प्रश्वास में सब समय नाम जपो। नाम जप से बढ़ कर कुछ भी साधना नहीं है। प्रारब्ध काटने का यही उत्कृष्ट उपाय है। श्वास-प्रश्वास में नाम जप सहज काम नहीं है। चाहे तीन-चार लाख या तीन-चार करोड़ जप करो, श्वास प्रश्वास में किए गए नाम जप की तरह लाभ किसी से नहीं होता है। “नाम” ठीक तरह से एक बार यदि श्वास प्रश्वास के साथ गुंथ जाय तो आत्मदर्शन होने लगता है। तब आभास होता है। “मैं शरीर से अलग हूँ।” नाम जप के साथ देह सात्विक और अंत में नाममय हो जाती है। नाममय देह की त्वचा में भी नाम की छाप स्पष्ट देखी जाती है।

(८) जिस प्रकार वृक्ष की जड़ को सींचने पर पेड़ के पत्ते, फल, फूल सभी को पानी मिल जाता है, उसी प्रकार एकमात्र भगवान की आराधना (नामजप) से सभी देवी-देवताओं की पूजा होती है।

(६) नाम जप करने में आलस्य बोध हो या अविश्वास भी आ जाय तो भी नाम जप न छोड़ो। इस समय कुछ देर सद्ग्रंथ पाठ या सत्संग कर लेना लाभप्रद है। शुष्कता की अवस्था में यदि दस-बारह बार भी नाम जप कर लिया जाय तो अच्छा है।

(१०) प्रार्थना कोई वाक्जाल या प्रक्रिया नहीं है। वह तो आत्मा का स्वभाव है। एक प्रबल अभाव का अनुभव करके उसके मोचन के लिए जब प्राण व्याकुल हो उठें, तो यही प्रार्थना है। उस समय चाहे वह कुछ बोले, रोए, चुपचाप रहे अथवा लेटा रहे; सभी अवस्थाओं में वह प्रार्थना ही करता है।

(११) अपने को किसी भी दल या संप्रदाय में আবদ্ধ मत रखो। जहां परमेश्वर का नाम हो, वहां प्रणाम करो। सभी धर्मार्थियों का आदर करो। अपना सद्गुरु प्रदत्त मंत्र उसी प्रकार गुप्त रखो, जिस प्रकार जमीन के नीचे बीज रहता है। उसे प्रकाशित करने पर शक्ति का हास होता है।

(१२) सद्गुरु का आश्रय पाकर धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों के बाद पंचम पुरुषार्थ प्रेम-भक्ति लाभ किया जा सकता है। यह पूर्णतः कृपा सापेक्ष है।

(१३) स्वप्न में कोई तत्त्व लाभ या दर्शन प्राप्त हो तो किसी से मत कहो। इससे भविष्य में दर्शन बंद हो जाता है। कहने और सुनने वाले दोनों की हानि हो सकती है। विश्वास करने वाला मिलना दुर्लभ है। (इन्हें लिख कर रखना साधकों के लिए हितकर है।)

‘कुलगुरु, सिद्धगुरु और सद्गुरु’

(१) आजकल गुरु करना बड़ी कठिन समस्या हो गयी है। पहले हमारे देश में जो लोग गुरु थे वे सभी सिद्ध पुरुष थे। कुल-कुण्डलिनी शक्ति जागृत होने पर ही उन्हें कुलगुरु कहा जाता था। आजकल कुलगुरु का अर्थ लोग वंश (या गद्दी) परंपरागत गुरु समझते हैं। आजकल जो लोग गुरु का कार्य करते हैं, पता लगाने पर ज्ञात होता है कि उनके वंश में कोई न कोई सिद्ध पुरुष था। कुछ समय पहले भी सिद्ध पुरुष के वंश में जो लोग गुरु का कार्य करते थे, वे सिद्ध न होने पर भी बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ पंडित थे। वे ज्योतिष आदि के भी अच्छे ज्ञाता थे। वे गणना द्वारा दीक्षा प्रार्थी की प्रकृति को मालूम कर लेते थे कि वह सात्विक है या राजसिक अथवा तामसिक। गणना द्वारा मंत्र का उद्धार करके, वही मंत्र वे शिष्य को प्रदान करते थे। इस रीति से दीक्षा होने पर, गुरु की कोई सहायता न मिलने पर भी शिष्य यदि श्रद्धापूर्वक यथाविधि मंत्र का जप और उन क्रियाओं को करता रहे तो वह ईष्ट वस्तु की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो सकता है। आजकल ठीक इस प्रणाली से दीक्षा प्रायः नहीं दी जाती है।

शाक्त के घर में वैष्णव प्रकृति वाले को, गुरु आकर, वंश की रीति के अनुसार शक्ति की ही उपासना सिखा जाते हैं अथवा वैष्णव वंश के किसी शाक्त भाव के व्यक्ति को, विष्णु-मंत्र ही देकर, उस मत के अनुकूल पद्धति बतला जाते हैं। इस प्रकार प्रकृति के विरुद्ध मार्ग पर चल कर साधन भजन करने से कुछ भी लाभ नहीं होता है, कारण प्रकृति के विरुद्ध साधना करने पर लोग फल नहीं पाते हैं। अंत में मंत्र, क्रिया और देवी देवताओं पर भी अविश्वास हो जाता है। फिर भी ऐसे गुरु से, गुरुशक्ति की कोई सहायता न पाने पर भी और किसी प्रकार के अनिष्ट की आशंका नहीं है। बल्कि साधक की श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा और चेष्टा रहने से उससे लाभ ही होता है। पर अज्ञात कुल शील वाले से दीक्षा लेने से अनेक समय विषम संकट उपस्थित हो जाता है।

(२) पुस्तकों की सहायता से योगाभ्यास करने की धुन में हर्निया, कुष्ठ, मस्तिष्क का रोग और कभी-कभी दूसरे प्रकार के उग्र रोगों के पल्ले पड़, कुछ लोग अपना बिल्कुल सत्यानाश कर लेते हैं। साधनभजन की किसी भी क्रिया का, कौशल को बिना जाने, केवल पुस्तक देख कर अभ्यास नहीं करना चाहिए। उन क्रियाओं का यदि अभ्यास करना हो तो क्रियावान गुरु से उनको ठीक-ठीक समझ लेना चाहिए एवं विधिपूर्वक करना चाहिए। नहीं तो कुछ हाथ नहीं लगता।

(३) बिना सोचे समझे “कोई सिद्ध पुरुष है” सुन कर उसके पास जाकर दीक्षा लेना भी ठीक नहीं है। सिद्ध न जाने कितने प्रकार के हैं। भूत सिद्ध, किसी विशिष्ट देवी-देवता के सिद्ध और ऐश्वर्य सिद्ध भी होते हैं। जिसका जो संकल्प हो उसकी प्राप्ति हो जाने से वह सिद्ध हो गया।

मैं जो कुछ चाहता हूँ, उस विषय में जो सिद्ध नहीं हैं, वे मुझे मार्ग कैसे बतला सकेंगे?

(४) सिद्ध होने से ही कोई सर्वज्ञ या धर्मात्मा अवश्य होगा यह नहीं कहा जा सकता। केवल योगांग के अभ्यास द्वारा ऐश्वर्य की सहायता से कोई व्यक्ति चंद्रलोक, सूर्यलोक, आदि में सशरीर जा आ सकता था, फिर भी वह नास्तिक था। अतः किसी सिद्ध व्यक्ति से साधन लेने के पहले अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि वह कैसा सिद्ध है?

नियम से उसके साथ कुछ समय तक रहना चाहिए। धीरे-धीरे उसका आचार-विचार, क्रिया-कर्म और साधन-भजन देखे, फिर यदि उसकी ओर चित्त आकृष्ट हो जाय और अपने लक्ष्य के विषय में वह व्यक्ति सिद्ध जान पड़े, तब उससे दीक्षा ली जा सकती है।

(५) सद्गुरु से दीक्षा लेना बिल्कुल स्वतंत्र प्रकार का है। वहां किसी समय-असमय और

योग्य-अयोग्य का विचार नहीं है। वह तो उनकी कृपा पर निर्भर है। यह दीक्षा चाहे जिस अवस्था में, चाहे जहाँ हो, एकमात्र भगवान की कृपा से ही हुआ करती है। भगवान ही सद्गुरु हैं। उनके पदाश्रित भगवज्जन महात्मा ही सद्गुरु हैं।

सद्गुरु शिष्य नहीं करते हैं, वे तो गुरु करते हैं। वे शिष्य के भीतर अपने ईष्ट देव को प्रतिष्ठित करके उन्हीं की सेवा पूजा करते हैं। शिष्य की देह उनके देवता का मंदिर है। देवमंदिर में किसी प्रकार का अनाचार होने पर उसको देख कर जैसे सेवक लज्जित होता है, दुःखित होता है, वैसे ही शिष्य की किसी प्रकार की दुर्दशा देखने से, सद्गुरु अपनी सेवा पूजा में त्रुटि होना समझते हैं।

(६) सद्गुरु का दिया हुआ नाम (मंत्र) न तो केवल नाम है, न अक्षर या न केवल एक शब्द ही है। इस नाम में ही भगवान की अनंत शक्ति निहित रहती है। शिष्य के भीतर इस शक्ति का संचार ही सद्गुरु की दीक्षा है।

(७) सद्गुरु दीक्षा, भगवान की कृपा से किसी को एक बार भी प्राप्त हो जाय तो फिर उसको स्वयं करने के लिए कुछ भी नहीं रह जाता। उसके जीवन का समस्त कार्य, प्रत्येक श्वास-प्रश्वास तक उसी एक के इच्छाधीन हो जाता है। जिस प्रकार से मगर किसी प्राणी को पकड़ता है, उसी तरह सद्गुरु शक्ति संचार करके, दीक्षा देकर, शिष्य को धीरे-धीरे आत्मसात् कर लेते हैं। इस संबंध में शास्त्र का वचन है— “दीक्षा ग्रहण मात्रेण नरो नारायणो भवेत्।”

(८) मैं अपने जीवन में आजमाई हुई बातें प्रत्यक्ष करके ही कह रहा हूँ कि सरल भाव से, जैसे कि बच्चा अपनी मां को पुकारता है, प्रभु को पुकारो तो वे अवश्य मिलते हैं।

(९) साधन करते समय साधक जो कुछ देखें, उसे कल्पना न समझें। पहली अवस्था में दर्शन क्षणिक एवं चंचल होते हैं। चित्त की निर्मलता एवं स्थिरता के साथ-साथ क्रमशः वे स्पष्ट और स्थायी होते हैं।

(१०) सद्गुरु के विषय में देखे गए स्वप्न सत्य माने जाते हैं।

(११) स्वप्न में यदि किसी को कोई मंत्र प्राप्त हो जाय तो भी उसे सद्गुरु के पास से दीक्षा लेना आवश्यक है।

(१२) साधारण (कुलगुरु) गुरु से प्राप्त मंत्र के चालीस पुरश्चरण करने के बाद सद्गुरु मंत्र पाने का अधिकारी होता है।



पंचम अध्याय

अदीक्षित व्यक्तियों के लिए साधन संकेत

श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी ने कहा है— “यह बात मुझे पक्की तौर पर मालूम हो गई है कि बिना गुरु के धर्म कभी प्राप्त नहीं हो सकता। कुछ मामूली-सा काम सीखने के लिए भी गुरु की आवश्यकता होती है। जो विषय सबसे अधिक दुर्बोध्य है, उसको बिना गुरु के सहज में पा जाना संभव नहीं है।” साधारण लोगों में अन्तर्दृष्टि नहीं है, वे किस तरह महापुरुष को पहचान सकेंगे? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने निम्न पांच लक्षणों को बतलाया। साधारणतः इन लक्षणों से महापुरुष पहचान लिए जाते हैं—

(१) महापुरुष कभी आत्मप्रशंसा नहीं करते; कार्य द्वारा अथवा किसी दूसरे प्रकार से भी वे अपना बड़प्पन प्रकट नहीं होने देते हैं।

(२) महापुरुष कभी किसी की निंदा नहीं करते हैं।

(३) महापुरुष कभी समय को वृथा नष्ट नहीं करते हैं। आत्मा के लिए कल्याणकारी किसी न किसी कार्य में सदा तत्पर रहते हैं।

(४) महापुरुष लोग सभी जीवों पर दया करते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग और वृक्षलता तक के दुःख में सहानुभूति दिखाते हैं। वे दूसरे की सारी दशाओं को अपनी समझते हैं। वे स्वयं किसी के लिए उद्वेग का कारण नहीं बनते हैं।

(५) महापुरुष लोग सदा संतुष्ट रहते हैं। कभी किसी कारण चंचल नहीं होते हैं।

इस प्रकार जब तक महापुरुष प्राप्त न हो तब तक साधकों को धैर्य धारण कर ईश्वर से, “मुझे सद्गुरु की प्राप्ति हो” ऐसी प्रार्थना करते रहना चाहिए। समय होने पर भगवत्कृपा से सद्गुरु की प्राप्ति अवश्य होगी।

आजकल गुरु बनना एक व्यवसाय जैसा बन गया है। इससे हिंदू समाज की बड़ी क्षति हुई है और हो रही है। प्रत्येक साधक गुरु बनाने के पूर्व अच्छी तरह जांच पहचान कर गुरु बनाये। जांच तो पहले ही करनी होगी, गुरु बनाने के पश्चात् नहीं। सारांश यह है कि गुरु में श्रद्धा, भक्ति, विश्वास तथा निर्भरता चाहिए।

गुरु को भी यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि शिष्य के नरक में जाने से गुरु को भी नरक में जाना पड़ेगा। सद्गुरु से प्राप्त साधन एक विशेष शक्ति है। यह शक्ति स्वयं प्राप्त करने पर भी, सद्गुरु के प्रत्यक्ष निर्देश के बिना दूसरे की देह में संचार करने की क्षमता

नहीं हो सकती। सद्गुरु के आश्रित शिष्य अपनी मृत्यु के समय सद्गुरु का दर्शन अवश्य पावेगा।

दीक्षा के समय सद्गुरु शिष्य के सब संचित पापों का मूल खंडन कर देते हैं। वृक्ष जिस प्रकार जड़ काट देने से मिट्टी का रस न पाकर धीरे-धीरे सूख जाता है, उसी प्रकार शिष्य के पापों का मूल छिन्न हो जाने से ज्यादा दिन तक उसमें पाप, अन्याय आदि कार्य करने की क्षमता नहीं रहती; पर जड़ काटने के पूर्व वृक्ष ने जो रस खींच लिया है, उसके बल पर कुछ दिनों तक वह ताजा रह सकता है। पूर्व संचित इस रस को ही प्रारब्ध कहते हैं। दीक्षा के बाद से नया प्रारब्ध नहीं बन सकता, पर दीक्षा के पहले जो प्रारब्ध जम गया है, उसे भुगतना पड़ता है। सद्गुरु द्वारा प्राप्त नाम जप से, प्रारब्ध कर्म, कुछ कम भुगतना पड़ता है। ठीक-ठीक सद्गुरु का आश्रय पाने से ज्यादा से ज्यादा तीन जन्म के भीतर साधक अवश्य भगवत्सात्रिध्य प्राप्त कर लेता है।

विभिन्न महात्माओं ने सद्गुरु प्राप्ति के लिए जिन साधनाओं को बतलाया है, उनमें से कुछ नीचे दी जा रही हैं। साधक अपनी रुचि के अनुसार निष्ठापूर्वक किसी भी एक साधना का अभ्यास कर सकते हैं :-

प्रथम— श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित निम्न मंत्र “तारक ब्रह्म” नाम से माना जाता है। इस नाम का जप एवं संकीर्तन सद्गुरु प्राप्ति का मुख्य साधन माना गया है।

तारक ब्रह्म मंत्र—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

इस मंत्र का नित्य जब भी अवसर मिले जप करना चाहिए। शीघ्र उपकार पाने के लिए कम से कम १०० माला नित्य जप करना आवश्यक है। एक माला का अर्थ १०८ बार तारक ब्रह्म मंत्र का जप। इसके सिवाय नित्य तुलसी जी के पौधे में जलदान तथा सूर्यप्रणाम करना चाहिए।

संध्या के समय इस नाम का संकीर्तन भी कर सकते हैं। इसके नियमित जप एवं संकीर्तन से सब प्रकार के विघ्नों का नाश हो जाता है तथा किसी भी साधक की किसी प्रकार से भी हानि नहीं हो सकती है।

द्वितीय— श्री गोस्वामी जी ने अपनी प्रकट अवस्था में “नाम ब्रह्म” की स्थापना की थी। अप्रकट होने के कुछ दिनों के बाद, पुरी की प्रसिद्ध साधिका (श्रीमती सरोजनी मित्र) साधारण लोगों में जो “मा-मनी” नाम से परिचित थीं, ने इस नामब्रह्म के जप की महिमा

बतलाई। उनके समक्ष श्री चैतन्य महाप्रभु तथा गोस्वामीजी ने प्रकट होकर निम्न मंत्र को सद्गुरु पाने का सहज उपाय कहा—

नाम ब्रह्म मंत्र—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

इस नाम ब्रह्म मंत्र का जप सब कोई, किसी भी समय, शुद्ध अथवा अशुद्ध अवस्था में कर सकते हैं। इस मंत्र में विशेष शक्ति है। बहुत लोगों ने इसके जप द्वारा समय पर सद्गुरु की कृपा प्राप्त की है।

तृतीय— किसी समय श्री विजयकृष्ण गोस्वामी से एक भक्त ने प्रार्थना की— “मुझे आप ऐसी कोई साधना बतलाइए, जिसे मैं सरलता से कर सकूँ एवं उपयुक्त समय पर मुझे सद्गुरु दीक्षा भी मिल जावे।” गोस्वामीजी ने कहा— “यह विधि सहज होने के साथ-साथ कठिन भी है। इसे सरल इस कारण कह रहा हूँ कि कोई भी इस साधना को सरलता से कर सकता है और साथ ही कठिन भी है क्योंकि सभी लोग इसे जान कर भी, इस साधना को करने का प्रयत्न नहीं करते हैं। इसे ॐकार साधन कहते हैं। ॐ का अर्थ अ, उ और म् है अर्थात् सृष्टि, स्थिति और प्रलय।” पूर्व में कुछ भी नहीं था, अभी वर्तमान में है, और भविष्य में कुछ भी नहीं रहेगा। जो कुछ भी दिखाई पड़े, उसी में इस भाव को आरोपित करें। यह वस्तु नहीं थी, अभी है, फिर नहीं रहेगी। क्रमशः यह भावना जितनी दृढ़ होगी, उतना ही सब कुछ असार, अनित्य और मिथ्या मालूम होगा। किसी पर “ममता” नहीं रहेगी। अंत में हृदय शून्य-सा लगेगा। उस समय ऐसी किसी वस्तु को पाने के लिए हृदय में व्याकुलता आएगी, जो कभी भी नष्ट न हो। उस समय भगवत्कृपा से सद्गुरु प्राप्ति एवं दीक्षा लाभ हो जायेगा। दीक्षा प्राप्ति होते ही जीवन धन्य हो जायेगा।

चतुर्थ— शास्त्रों में गुरुतत्व श्रेष्ठ तत्व माना गया है।

श्री गुरु गीता (श्लोक ३६)—

न गुरोरधिकं तत्त्वं न गुरोरधिकं तपः ।

अर्थात् गुरु तत्व से श्रेष्ठ तत्व कुछ भी नहीं है एवं गुरु सेवा से अधिक तपस्या भी नहीं है।

इस गुरु तत्व पर आधारित निम्न संकीर्तन है—

भजो गुरु गौराङ्ग राधा गोविंद

ब्रह्म नारायण हरे कृष्ण राम ॥

अर्थ— गुरु कौन है? गौराङ्ग (चैतन्य महाप्रभु)। गौराङ्ग कौन है? राधा गोविंद (राधा भाव एवं कांति लिए हुए गोविंद जी हैं)। राधा गोविंद का निर्गुण स्वरूप ब्रह्म है एवं सगुण स्वरूप नारायण है। हरे, कृष्ण और राम इन नामों से उनका कीर्तन किया जाता है।

इस कीर्तन का प्रचार सर्वप्रथम श्री गोस्वामीजी के शिष्य श्री किरण चंद्र दरवेशजी ने किया था। अपने साधन आश्रम में एक दिन उन्होंने देखा कि ऋषि, मुनियों के साथ बुद्ध, मुहम्मद, ईसा तथा अन्य विभिन्न संप्रदाय के महात्माओं के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी जा रहे हैं तथा यह नाम संकीर्तन हो रहा है—

भजो गुरु गौराङ्ग राधा गोविंद।

ब्रह्म नारायण हरे कृष्ण राम ॥

इस संकीर्तन का भावार्थ यह है— नाम, नामी और नामदाता अभिन्न हैं। सर्वप्रथम शक्तिपूर्ण नाम जप करते हुए साधक के सामने नामदाता सद्गुरु का रूप स्पष्ट हो उठता है। पश्चात् नाना प्रकार की भगवत् लीला, दृश्य, देवी देवताओं की मूर्तियाँ साधक के संस्कार के अनुसार दिखाई पड़ती हैं। फिर बाद में देखा जायेगा कि गुरु रूप उपर्युक्त रूपों में मिल रहा है फिर वे रूप भी गुरु रूप में मिल रहे हैं। नाम, रूप एवं आकार उस समय लुप्त हो जावेंगे। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार सबके सब विलीन हो जायेंगे और गुरु के उस दिव्य रूप एवं इष्ट के अभेदत्व को देख कर, उसके अतल तल में साधक डूब जायेगा। उस समय साधक के समक्ष यह तत्व प्रकट होगा नाम, नामी और नाम दाता अभिन्न हैं। नामी का अर्थ ईष्ट देवता है। इसी कारण कहा गया है :—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ॥

सद्गुरु प्राप्ति के लिए एवं सद्गुरु की प्राप्ति जिन्हें हो गई है, उनके लिए भी यह नाम संकीर्तन बहुत सहायक है। गुरुतत्व पर आधारित इस संकीर्तन को सभी संप्रदाय के लोग कर सकते हैं। बंगाल की तरफ विभिन्न स्थानों में यह संकीर्तन विभिन्न रागों एवं तालों में गाय जाता है।

जिन्हें नाम जप के समय लंबे मंत्रों का जप करने में असुविधा होती है, वे केवल इस “गुरु” मंत्र का, सब समय जप कर सकते हैं। यह विधि जिन्हें सद्गुरु से मंत्र नहीं मिला है, केवल उनके लिए है।

इस “गुरु” मंत्र के जप से भी सद्गुरु की प्राप्ति हो सकती है।

पंचम— जो साधक नामजप का निरंतर अभ्यास करना चाहते हैं, उन्हें आहार के संबंध में सावधानी रखना आवश्यक है।

आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धिः सत्त्व शुद्धौ ध्रुवास्मृतिः।

(छांदोग्य उपनिषद्)

अर्थ— शुद्ध आहार से चित्त शुद्ध होता है और चित्त शुद्ध होने से भगवान का निरंतर स्मरण होता है।

आहार में साधारणतः तीन दोष पाए जाते हैं— प्रथम जाति दोष यथा मांस, मछली, अंडे, प्याज आदि तमोगुणी वस्तुएँ कभी नहीं खानी चाहिए। दूसरी बात आश्रय दोष है जिस प्रकार की प्रकृति का मनुष्य भोजन बनाता एवं परोसता है, उसका प्रभाव सूक्ष्म रूप से मन पर पड़ता है। इस कारण सात्विक प्रकृति के लोगों का बनाया भोजन ही पाया करें। तीसरी बात है निमित्त दोष— भोजन बनाते समय बर्तनों में धूल आदि अपवित्र वस्तुएं न गिरें। जूठा, अपवित्र तथा श्राद्ध-अन्न आदि न खावें। इन्हें खाने से भक्ति भाव की हानि होती है एवं साधना में मन नहीं बैठ पाता है।

आजकल दूसरों की जूठी वस्तुओं को खाना एक सामाजिक नियम जैसा हो गया है। रोगों के संक्रमण के साथ-साथ इससे मन की चंचलता बढ़ जाती है। इस कारण साधकों को इसमें सावधानी रखनी चाहिए।

अनिवेदित वस्तुएं कभी न खावें। पवित्र वस्तुओं में, तुलसी द्वारा ईश्वर को निवेदित कर, प्रसाद ग्रहण करें। इससे सात्विक भाव बढ़ जाता है।

ईश्वर का स्मरण स्वार्थी मनुष्य को नहीं रहता। हम जितना ही दूसरों का उपकार करेंगे, उतनी ही हमारे हृदय की शुद्धि होगी और उसमें परमात्मा का निवास होगा। हमारे शास्त्रों में इस कारण नित्य पंच महायज्ञ करने का विधान है :—

अध्ययनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।

होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥

(१) **ब्रह्मयज्ञ—** ऋषियों द्वारा रचित ग्रंथों का नित्य कुछ अंश पाठ करें तथा सत्संग करें। इससे ऋषियों का आशीर्वाद प्राप्त होता है।

(२) **पितृ यज्ञ—** श्राद्ध, नित्य-तर्पण आदि से पितृ-पुरुषों के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करें। उनके आशीर्वाद से गृहस्थों का मंगल होता है।

(३) **देव यज्ञ**— ईश्वर, देवता आदि के उद्देश्य से होम, पूजा तथा तीर्थों में भ्रमण करना देव यज्ञ कहलाता है।

(४) **भूत यज्ञ**— कीट, पतंग, पशु, पक्षी, वृक्ष आदि की भोजन, जल आदि द्वारा सेवा करना।

(५) **नृ-यज्ञ**— घर में आए हुए अतिथि का सम्मान करना। अतिथि का अर्थ जो कभी घर में नहीं आए हों और एक दिन से अधिक न ठहरें; विश्राम के बाद चले जायेंगे। कुटुंबी को अतिथि नहीं कहते हैं। घर में यदि कुछ भी खाने का न हो तो कम से कम शीतल जल से भी अतिथि की सेवा अवश्य करो। दीन ही परमात्मा का रूप है, दुःखी ही ईश्वर का रूप है। गृहस्थ का घर ऐसे दीन दुःखी के लिए सर्वदा खुला रहना चाहिए। कलियुग में नाम और दान ही एकमात्र धर्म है।



षष्ठ अध्याय

(क) प्रातः वंदना

लोकेश चैतन्य मयाधिदेव

श्रीकांत विष्णो भवदाज्ञयैव ।

प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थम्

संसारयात्रामनुवर्त्तयिष्ये ॥

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः

जानाम्य धर्मं न च मे निवृत्तिः ।

त्वया हृषीकेश हृदि स्थितेन

यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि ॥

ॐ ब्रह्मानंदं परम सुखदं केवलं ज्ञान मूर्तिम्

द्वंद्वातीतं गगन सदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम् ।

एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधी साक्षीभूतं

भावातीतं त्रिगुण रहितं सदगुरुं त्वं नमामि ॥

ॐ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।

प्रणत क्लेश नाशाय गोविंदाय नमो नमः ॥

ॐ जटिने दण्डिने नित्यं लंबोदर शरीरिणे ।

कमंडलू निषंगाय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥

ॐ हरि ॐ हरि ॐ हरि ॐ

गुरु ॐ गुरु ॐ गुरु ॐ



(ख) श्रीमद्भगवद्गीता

अथैकादशोऽध्यायः

-: विश्वरूप दर्शन योगः नाम :-

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।

यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥ १ ॥

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशोमया ।

त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥ २ ॥

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।

द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो

योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ ४ ॥

श्री भगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।

नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥ ५ ॥

पश्यादित्यान्वसूनुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।

बहून्यदृष्ट पूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ ६ ॥

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।

मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद् द्रष्टुमिच्छसि ॥ ७ ॥

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।

दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ ८ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
 दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥ ६ ॥
 अनेक वक्त्रनयनमनेकाद्भुत दर्शनम् ।
 अनेक दिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १० ॥
 दिव्यमाल्यांबरधरं दिव्यगंधानुलेपनम् ।
 सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतो मुखम् ॥ ११ ॥
 दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
 यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥ १२ ॥
 तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
 अपश्यद् देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥ १३ ॥
 ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः ।
 प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥ १४ ॥

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे,
 सर्वास्तथा भूतविशेष सङ्घान् ।
 ब्रह्माण्मीशं कमलासनस्थ-
 मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥ १५ ॥
 अनेक बाहूदर वक्त्रनेत्रं,
 पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
 नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
 पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥ १६ ॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च

तेजो राशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।

पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्

दीप्तानलार्कं द्युतिमप्रमेयम् ॥ १७ ॥

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं,

त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।

त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता

सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८ ॥

अनादि मध्यान्तमनन्तवीर्य-

मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।

पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं

स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥ १९ ॥

द्यावा पृथिव्योरिदमन्तरं हि,

व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः

दृष्ट्वाद्भुतं रूपं मुग्रं तवेदं

लोकं त्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २० ॥

अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति

केचिद्भीताः प्राञ्जलयोगृणन्ति ।

स्वस्तीत्युत्तमा महर्षि सिद्ध सङ्घाः

स्तुवंति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥ २१ ॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या

विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।

गन्धर्वयक्षासुर सिद्ध सङ्घाः

वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं

महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।

बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं

दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥ २३ ॥

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं

व्यात्ताननं दीप्त विशालनेत्रम् ।

दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा

धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥ २४ ॥

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि

दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।

दिशो न जाने न लभे च शर्म

प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ २५ ॥

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः

सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः ।

भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ

सहास्म दीयैरपि योधमुख्यैः ॥ २६ ॥

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति

दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।

केचिद्विलग्रा दशनान्तरेषु

संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥ २७ ॥

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः

समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।

तथा तवामी नरलोकवीरा

विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥ २८ ॥

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा

विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।

तथैव नाशाय विशन्तिलोका-

स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

लेलिह्यसे ग्रसमानः समंता-

ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।

तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं

भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥ ३० ॥

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो

नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।

विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं

न हि प्रजानाभि तव प्रवृत्तिम् ॥ ३१ ॥

श्री भगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो

लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।

ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे

येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ ३२ ॥

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व

जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।

मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥ ३३ ॥

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥ ३४ ॥

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥ ३५ ॥

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः ॥ ३६ ॥

कस्माच्च ते नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥ ३७ ॥

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।

वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम

त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥ ३८ ॥

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः

प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः

पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ ३९ ॥

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते

नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।

अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं

सर्वं समानोषि ततोऽसि सर्वः ॥ ४० ॥

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं

हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।

अजानता महिमानं तवेदं

मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥ ४१ ॥

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि

विहारशय्यासन भोजनेषु ।

एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं

तत्क्षामये त्वामहम् प्रमेयम् ॥ ४२ ॥

पितासि लोकस्य चराचरस्य

त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।

न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो

लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥ ४३ ॥

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधायकायं
 प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
 पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
 प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ ४४ ॥
 अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
 भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
 तदेव मे दर्शय देव रूपं
 प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ ४५ ॥
 किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त
 मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
 तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
 सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥

श्री भगवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
 रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
 तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
 यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥
 न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
 र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
 एवंप्रपन्नः शक्य अहं नृलोके
 द्रष्टुं त्वदन्येन कुरु प्रवीर ॥ ४८ ॥
 मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
 दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ।

व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं

तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥ ४६ ॥

संजय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा

स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।

आश्वासयामास च भीतमेनं

भूत्वा पुनः शौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५० ॥

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव शौम्यं जनार्दन ।

इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिंगतः ॥ ५१ ॥

श्री भगवानुवाच

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्ट्वानसि यन्मम ।

देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ ५२ ॥

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।

शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्ट्वानसि मां यथा ॥ ५३ ॥

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन ।

ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ ५४ ॥

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः

निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥ ५५ ॥

इति श्री महाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि
श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगो
नामैकादशोऽध्यायः ।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गो ब्राह्मण हिताय च ।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविंदाय नमो नमः ॥

(ग) विश्वरूप दर्शन भावार्थ

श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी की परंपरा के प्रसिद्ध सद्गुरु श्रीमत् स्वामी असीमानंद सरस्वतीजी ने विश्वरूप-दर्शनयोग पर जो बंगला में प्रवचन दिया था, उसका सारांश यहाँ दिया जा रहा है :-

हम लोग नित्य प्रातःकाल श्री गीताजी के विश्वरूप-दर्शन योग (एकादश अध्याय) का पाठ करते हैं। “विश्वरूप-दर्शन-योग” पाठ करने के पहले भगवान से प्रार्थना करते हैं— “हे प्रभो, हम लोग सबेरे उठ कर तुम्हारे नाम का स्मरण कर संसार के कर्मों को प्रारंभ करते हैं।”

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः

जानाम्य धर्मं न च मे निवृत्तिः ।

त्वया हृषिकेश हृदि स्थितेन

यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि ॥

इसका भावार्थ है— “धर्म क्या है? यह मुझे मालूम है, पर उसे करने की मुझमें प्रवृत्ति नहीं है। अधर्म का स्वरूप भी मुझे मालूम है, पर उसे त्याग करने की शक्ति मुझमें नहीं है। हे हृषिकेश, हे इंद्रियों के अधिपति प्रभु! तुम तो मेरे हृदय में ही हो, तुम मुझे जिस कार्य में नियुक्त करोगे, मैं वही कार्य कर सकूंगा।”

“मैं धर्म, अधर्म पाप अथवा पुण्य कुछ नहीं जानता हूँ। यह संसार तुम्हारा है, मैं तुम्हारा एक सेवक हूँ। तुम मेरे द्वारा जो कार्य करा लोगे, मैं केवल उसे ही करूँगा। मेरा कुछ भी नहीं है, अच्छा-बुरा सब कुछ तुम्हारा ही है। मैं तुम्हारे पास आत्मसमर्पण करता हूँ। तुम जो कार्य कराओगे, उसे करते हुए ही मेरे दिन गुजर जाएँगे।”

प्रतिदिन सबेरे उठ कर हम अपने कर्मक्षेत्र में निकल पड़ते हैं। तुम तो हमारे नित्य सहचर हो। सब इंद्रियगण हमें विश्व की सब अवस्थाओं के भीतर डाल देते हैं। दिन भर के कार्यों से थक कर संध्या के समय हम वापस घर लौट आते हैं और ईश्वर की सुखमय गोद में ही निद्रा पाते हैं। उस समय प्रार्थना करते हैं— “प्रभु! सुबह तुम्हारा नाम लेकर मैं अपने यात्रा पथ पर निकला था। दिन भर इंद्रियों के साहचर्य से विभिन्न कार्यों को कर शाम के समय तुम्हारे पास लौट आया हूँ। मैंने दिन भर जो कुछ भी कार्य (पाप, पुण्य, कर्म, अकर्म आदि) किये हैं, उन सबको तुम्हारे चरणों में अर्पित करता हूँ। कृपया तुम सब कुछ

ग्रहण करो एवं अपनी शांतिमय गोद में मुझे आश्रय दो।”

यही हमलोगों की सुबह एवं शाम की नित्य प्रार्थना है। विश्व में हम जो कुछ भी देखते हैं; भला, बुरा सब उन्हीं प्रभु का रूप है। सभी के भीतर वे ही हैं! हमलोग यदि इस विश्वरूप को न समझ सकें, यदि इस विश्वरूप का दर्शन न कर सकें; अर्थात् मनुष्य पशु में, जड़ चेतन में, वृक्षलताओं में, हर वस्तु में, अपने प्रभु को न देखें तो हमें भगवद्दर्शन नहीं होगा। सब जगह उन्हें देखना होगा, सभी के भीतर उन्हें देखना पड़ेगा, अणु परमाणु के भीतर उन्हें देखना होगा। जिस समय सबके भीतर प्रभु दिखाई देंगे तभी दर्शन पूर्ण होगा। उनके एक भी अंश को छोड़ कर प्रभु का दर्शन संपूर्ण नहीं होगा।

इसी कारण सुबह उठ कर हम लोग इस विश्वरूप दर्शन योग नामक अध्याय का नित्य पाठ करते हैं। साथ ही मन में चिंता करते हैं एवं प्रार्थना करते हैं— “हे प्रभु तुम्हारा यह विश्वरूप दर्शन मेरे लिए सार्थक हो। विश्व के सब रूपों के भीतर, हर कार्य के भीतर मैं केवल तुम्हारा दर्शन कर सकूँ। सब कार्यों में तुम्हारे सेवा ज्ञान से तुम्हारी पूजा संपूर्ण कर सकूँ। यही तुम्हारे पास मेरी प्रार्थना है।”

इस प्रकार से सब कुछ उनके चरणों में अर्पण करने के बाद हम निश्चित होकर कहते हैं— “प्रभु! मेरा अब कुछ भी नहीं रहा। कर्म भी तुम्हारा है, विश्वरूप भी तुम्हारा ही है। अतः विश्व के सब कर्मों के कर्ता तुम्हीं हो, मेरा केवल सेवा करने का अधिकार है, कर्म करने का अधिकार है। तुमने तो कहा है कर्म में ही तुम्हारा अधिकार हो, कर्मफल में नहीं।”

“मैंने इस कारण दिन भर के सारे कर्म-अकर्म का फल तुम्हारे चरणों में अर्पित किया है इस कर्मफल के मालिक तुम हो, मैं नहीं। हे प्रभु! मैं निश्चित मन से, एकाग्र भाव से तुम्हारी ही सेवा कर सकूँ। सारे दिन के कर्म-यज्ञ के एकमात्र अधिपति तुम्हीं हो, इस ज्ञान को रख कर सब कार्य सुंदर रूप से संपूर्ण कर सकूँ यही मेरी एकमात्र प्रार्थना है।”



भजन-संग्रह

प्रातःकाल गाए जाने वाले भजन

(१)

राग — प्रभाती

हरे मुरारे, मधुकैटभारे
 गोपाल गोविंद गाओ रे ।
 गाओ यशोदानंदन श्री मधुसूदन
 गोपीजन वल्लभ प्राणारामे ॥
 एक बार गाओ-गाओ रे-प्राण भोरे
 एक बार गाओ, गाओ रे ॥ टेक ॥

(२)

राग — भैरव

ऊधो मोहि संत सदा अति प्यारे ।
 जाकी महिमा वेद उचारे ॥
 मेरे कारण छोड़ जगत के भोग पदारथ सारे ।
 निशदिन ध्यान धरे हिय माँहि सब घर काज बिसारे ॥
 मैं संतन के पीछे जाऊँ जहँ-जहँ संत सिधारे ।
 चरणन रज निज अंग लगाऊँ शोधूँ गात हमारे ॥
 संत मिले तब मैं मिल जाऊँ संत न मुझसे न्यारे ।
 बिनु सतसंग मुझे नहिं पावे कोटि जतन कर डारे ॥
 जो संतन के सेवक जग में सो मुझ सेवक भारे ।
 ब्रह्मानंद संत जन पल में भव बंधन सब टारे ॥

(३)

राग — प्रभाती

वृंदा विपिने मंगल आरति, हेरोरे नयन आनंदे ।
 मंगल आरति, मंगल आरति, सुरनर भुवन वंदे ॥
 मंगल आरति होतेछे, नाचिछे सब सखीं वृंदे ।
 गाइछे कतो सखी वृंदे, नाचिछे कतो सखी वृंदे ॥

किबा नाचिछे सब सखी वृंदे ।
 राधा गोविंदे धेरि-धेरि नाचिछे सब सखी वृंदे ॥
 कुंज-कुंज होते धावल गोपनारी

हेरोइते श्री राधागोविंदे

तारा जाय, जायरे, गोविंद दरशने जाय जायरे,
 मुखे गोविंद गोविंद बोले जाय जायरे;
 तारा गोविंद रूप हृदे धरे जाय जायरे;
 मुखे गोविंद गोविंद बोले, गोविंद प्रेमे भरे;

कुंज कुंज होते धावल गोपनारी

हेरोइते श्री राधा गोविंदे ।

वृंदा विपिने मंगल आरति

हेरो रे नयन आनंदे ॥

बंगला शब्दार्थ :- हेरो = देखो। होतेछे = हो रहा है। नाचिछे = नृत्य कर रहे हैं। गाइछे = गायन कर रहे हैं। धावल = दौड़ना, धावित होना। हेरोइते = देखने के लिए।

(४)

राग - प्रभाती

जय राधे, जय राधे गोविंद, जय राधे श्री राधे । १ ।

वृषभानु नंदिनी, रमणी शिरोमणी, कानुमन
मोहिनी राधे ॥ जय राधे.....श्री राधे । १ ।श्री वृंदावन में कुसुम कानने
भ्रमरा हरिगुण गावे (भ्रमरी राधा गुण गावे)
मधुर गुन गुन, गुन गुन रवे भ्रमरी राधा गुण गावे
जय राधे.....श्री राधे । १ ।रतन पालंक पर दुहुंजन बैठल,
दुहूँ मुख सुंदर साजे ।श्याम के वामे नवीना किशोरी,
मुचकि मुचकि हासे ॥श्याम शिरे मयूर मुकुट विराजे,
राई शिरे वेणी शोभे ॥श्याम गले वनमाला विराजे,
राई गले मोति दोले ॥

(माला दोले दोले रे - राई गले मोति दोले)

पितांबर धर नील-पट्ट-धारिणी

वामे सौदामिनी राजे

जेनो घने सौदामिनी राजे ।

श्याम अधरे मोहन मूरली,

(जय) राधे राधे बोले बाजे ॥

श्याम करे शोभे रतन वलय

राई करे कंकन साजे ।

श्याम कटि तटे घुंघुर बाजे

राई कटे किंकिनी बाजे ॥

युगल चरणे मणिमय नूपूर

रुनु झुनु, रुनु झुनु बाजे ।

श्रीकृष्ण दास भने मधुमय वृंदावने,

युगल किशोर विराजे ॥

श्रीकृष्ण दासेर मन, मधुरस वृंदावन,

युगल चरण अनुरागे ।

(एई) मधुमय वृंदावने-राधा गोविंद विराजे,

(एई) मधुमय वृंदावने-राधा गोपीनाथ विराजे,

(एई) मधुमय वृंदावने-राधा मदनमोहन विराजे,

(एई) मधुमय वृंदावने-राधा राधारमण विराजे,

(एई) मधुमय वृंदावने-राधा दामोदर विराजे,

मोदेर राधा श्याम सुंदर विराजे ॥

॥ जय राधे श्री राधे गोविंद, जय राधे श्रीराधे ॥

बंगला शब्दार्थ- मुचकि मुचकि = मंद मंद मुस्कान । सौदामिनी = बिजली की चमक जैसे मेघ में दिखाई पड़ती है । मोदेर = हमारे ।

(५)

राग — प्रभाती

भज गौराङ्ग, कह गौराङ्ग, लह गौराङ्गेर नाम रे ।

जे जन गौराङ्ग भजे से होय आमार प्राण रे ॥

- दयाल निताई बोले रे ॥

दिनान्ते गौराङ्गेर नाम जे लय एकबार रे
 (जो दिन गेलो, हा गौराङ्ग बोले एकबार रे)
 आमि होई तार चिराधीन, से होय आमार प्राण रे ॥
 अक्रोध परमानंद नित्यानंद राय रे,
 (आमार) अभिमान-शून्य निताई नगरे बेझाय रे ।
 निताई जारे देखे तारे बोले दंते तृण धरि,
 आमारे किनिया लहो भजो गौर हरि

एक बार भजो, भजो रे—

गौर भजले तो देर केना रबो भजो रे
 आमारे किनिया लहो भजो गौर हरि ॥
 एतो बोलि दयाल निताई भूमे गोड़ि जाय रे
 —जीवेर दुःख सोइते नारे निताई, भूमे.....
 —जीवेर दशा मोलिन हेरे निताई भूमे.....
 —जीवे हरिनाम लयना बोले निताई, भूमे.....
 सोनार प्रतिमा जेनो धूलाते लुटाय रे
 —धरणी धरेंद्र निताई धरणी लुटाय रे ॥
 अधम चंडलादिर प्रति घरे गियारे,
 —जतो अधम पतित जनार प्रति घरे गियारे ।
 देवेरो दूर्लभ नाम दिच्छेन जाचिया रे-
 —जा ब्रह्मादि ओ वान्छा करे,
 देवेरो दूर्लभ नाम, ब्रह्मा आदि वांछा करे,
 ब्रह्मारो दूर्लभ नाम दिच्छेन जाचियारे,

—प्रति घरे घरे जने जने
 —ब्रह्मार दूर्लभ नाम घरे घरे जने जने । ।
 एमन दयाल अवतारे रतिना जन्मिलो रे
 —रति ना जन्मिलो जार मतिन होईलो रे
 लोचन बोले सेइतो भवे एलो और गेलो रे,
 —तार आसा जावा सार होलो
 —श्री गौराङ्गेर भजन बिना
 —आसा जावा सार होलो
 —महाप्रभुर भजन बिना तार आसा जावा सार होलो ।
 लोचन बोले से जन भवे एलो आर गेलो रे ।
 —केवल एलो आर गेलो रे ॥
 भजो गौराङ्ग कहो गौराङ्ग लहो गौराङ्गेर नाम रे ।

बंगला शब्दार्थ- लह = लेना। गेलो = चला गया। अमिहोई = मैं होता हूँ। नितार्ई = नित्यानन्दजी। बेड़ाय = भ्रमण करते हैं। जारे = जिसे। तारे = उसे ही। किनियालह = खरीद लो। तोदर केना रबो = तुम्हारा क्रय किया (कृतदास) रहूँगा। भूमे गोडि = भूमि में लोट-पोट होना। सोईते नारे = सहन नहीं कर। हेरे = देखकर। लयना = नहीं लेते हैं। जेनो = जैसे। धरणी लूटाय = जमीन में लोट पोटा होना। गियारे = जाकर। दिच्छेन जाचियारे = अपने से दे रहे हैं। जार मति ना होईलो रे = जिसका मन न लगा हो। एलो आर गेलो रे = केवल आया और चला गया। आसा जावा = आना-जाना। होलो = हुआ। सार = व्यर्थ।

(६)

राग — भैरवी

जागिये ब्रज राज कुँवर, कमल कुसुम फूले ।
 कुमुद वृंद सकुचित भये भृंग लता भूले ॥
 तमचर खग रौर सुनहुँ, बोलत बनराई ।
 राभंति गौ खरिकन में, बछरा हित धाई ॥

विधु मलिन रवि प्रकाश, गावत नर नारी ।
सूर-श्याम प्रात उठौ, अंबुज कर धारी ॥

(७)

राग — प्रभाती

भजहुँरे मन, श्रीनन्द नन्दन, अभय चरणारविन्द रे ।
दुर्लभ मानव जनम सत्संगे, तरहुँ ये भवसिन्धु रे ॥
शीत आतप वात वरिषन, ये दिन यामिनी जागी रे ।
विफले सेविनूँ कृपन दूरजन, चपल सुख लव लागी रे ॥
ये धन यौवन पुत्र परिजन, इथे की आछे करो प्रीत रे ।
नलिनीदल जल जीवन टलमल, भजहुँ हरिपद निति रे ॥
श्रवण कीर्तन स्मरण वंदन, चरण सेवन दास्य रे ।
पूजन सखीगन आत्म निवेदन,
गोविंददास अभिलाष रे ॥

(८)

राग — अहीर धैरव

नारायण का भजन करो मन,
मन की छोड़ भटकना सारी ।
क्या मथुरा क्या काशी जावे,
क्या वन पर्वत फिरत अनाड़ी ॥
जाग जोग कठिन कलियुग में, (मन वा.....)
थोड़ी उमर काम बहु भारी ।
शास्त्र अनेक पढ़ा दिन राति,
मुक्ति न होय बिन भजन तुम्हारे ॥

ब्रह्मानंद कटे भव बंधन,

हरि का नाम सुमर सुखकारी ॥

(६)

राग — अहीर भैरव

काहेरे वन खोजन जाई ।

सर्व निवासी, सदा अलेपा तोही संग समाई ॥

पुष्प मध्य ज्यों वास वसत है,

मुकुर (दर्पण) माहि जैसे छाई ।

तैसे ही हरि बसे निरंतर,

घट ही खोजो भाई ॥

बाहर भीतर एक ही जानो, यह गुरु ज्ञान बताई ।

जन नानक बिन आप चिन्हे, मिटे न भ्रम की खाई ॥

(१०)

राग — भैरवी

यही राम भजन के बेरा, (मनवा) कृष्ण भजन के बेरा ।

जब ये दुनिया बदल जावेगी,

हंसा छूटे तेरा । (मनवा.....)

घोर माया में जनम लिया है,

जैसे बादल घेरा । (मनवा.....)

अब चलहुं के बेरिया कोई, मुख से न बोले

संग न जाए तेरा । (मनवा.....)

भाई भतीजा मिल घेरि बैठे,

बेटा सुत ही दारा । (मनवा.....)

ब्रह्मानंद कहे, मन तन भारी,

भज लेना यही बेरा । (मनवा.....)

(११)

राग — भैरवी

रे मन, कृष्ण नाम कहि ली जै ।

गुरु के वचन अटल करि मानहि, साधु समागम की जै ॥

पढ़िये सुनिये, भगति भागवत, और कथा कही की जै ।

कृष्ण नाम बिनु जनमु बादिही, बिरथा काहे जी जै ॥

कृष्ण नाम रस बह्यो जात है, तृष्णावन्त है पी जै ।

सूरदास हरि शरण ताकिये,

जनम सफल करि लीजै ॥

(१२)

राग — प्रभाती

देवाधिदेव गौरचंद्र, गौरीदास मंदिरे ।

गौरीदास मंदिरे प्रभु, अंबिकाते विहरे ॥

तस हेम अंग कांति, प्रातः अरुण अंबरे ।

आनंद कंद नित्यानंद, संगे रंगे विहरे ॥

चारु अरुण गुंजाहार, हृद कमले जो धरे ।

विरंची सेव्य पाद पद्म, लक्ष्मी सेव्य सादरे ॥

श्री राधिकार अनुरूप, प्रेम-भक्ति वांछा जो करे ।

पाषंड खंड नित्यानंद, धर्म दंड जो धरे ॥

घनर घनर घंटा बाजे,

बाजे करताल रे ।

मधुर मधुर मृदंग बाजे,

सुनिते, रसाल रे ॥

गौरीदास करत आस,

सर्व जीव उद्धारे ॥

(१३)

नाम—संकीर्तन (प्रभाती)

(१) हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे,
हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे ॥

(२) यशोदानंदन ब्रज बिहारी,
गोविंद गोपाल कृष्ण मुरारी ॥

(३) भजो गुरु गौरांग राधा गोविंद,
ब्रह्म नारायण हरे कृष्ण राम ॥



संध्याकालीन गाए जाने वाले भजन

(१४)

(क) संध्या वंदना

ॐ अज्ञानं तिमिरांधस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
 चक्षुरुन्मिलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
 ॐ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
 प्रणत क्लेशनाशाय गोविंदाय नमो नमः ॥
 ॐ जटिने दण्डिने नित्यं
 लंबोदर शरीरिणे ।

कमंडलु निसंगाव

तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥

ॐ हरि ॐ हरि ॐ हरि ॐ

गुरु ॐ गुरु ॐ गुरु ॐ

(ख) संध्या वंदना

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि ।
 मंगलानांच कर्तारौ वंदे वाणी विनायकौ ॥
 भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ ।
 याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धा स्वांतःस्थमीश्वरम् ॥
 वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम् ।
 यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चंद्रः सर्वत्र वंद्यते ॥
 ॐ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
 प्रणत क्लेशनाशाय गोविंदाय नमो नमः ॥

ॐ जटिने दण्डिने नित्यं लंबोदर शरीरिणे ।

कमंडलु निषंगाय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥

ॐ हरि ॐ हरि ॐ हरि ॐ

गुरु ॐ गुरु ॐ गुरु ॐ

(१५)

राग — गौड़ सारंग

भव सागर तारण कारण हे,

रवि नंदन बंधन खंडन हे ।

शरणागत किंकर भीत मने,

गुरुदेव दया करो दीन जने ॥ १ ॥

हृदिकंदर तामस भास्कर हे,

तुम विष्णु प्रजापति शंकर हे ।

पर ब्रह्म परात्पर वेद भने,

गुरुदेव दया करो दीन जने ॥ २ ॥

मन वारन शाशन अंकुश हे,

नर त्राण तरे हरि चाक्षुष हे ।

गुण ज्ञान परायण देवगणे,

गुरुदेव दया करो दीन जने ॥ ३ ॥

कुल कुण्डलिनी घुम भंजक हे,

हृदि ग्रंथि विदारण कारक हे ।

मम मानस चंचल रात्र दिने,

गुरुदेव दया करो दीन जने ॥ ४ ॥

रिपु सूदन मंगल नायक हे,
 सुख शांति वराभय दायक हे ।
 त्रय ताप हरे तव नाम गुणे,
 गुरुदेव दया करो दीन जने ॥ ५ ॥
 अभिमान प्रभाव विमर्दक हे,
 गतिहीन जने तुमी रक्षक हे ।
 चित शंकित वंचित भक्तिधने,
 गुरुदेव दया करो दीन जने ॥ ६ ॥
 तव नाम सदा शुभ साधक हे,
 पतिताधम मानव पावक हे ।
 महिमा तव गोचर शुद्ध मने,
 गुरुदेव दया करो दीन जने ॥ ७ ॥
 जय सद्गुरु ईश्वर प्रापक हे,
 भवरोग विकार विनाशक हे ।
 मनलीन रहे तव श्री चरणे,
 गुरुदेव दया करो दीन जने ॥ ८ ॥

(१६)

ठाकुर ऐसा ही नाम तुम्हारा ।
 प्रभुजी ऐसा ही नाम तुम्हारा ।
 गुरुजी ऐसा ही नाम तुम्हारा ॥
 पतित पवित्र लिए कर अंपना, सकल करत नमस्कारा ।
 जात बरण कोउ पूछत नाहिं, जाचत चरणारवारा ॥
 साधु संगत नानक बुध पाई, हरि कीर्तन जीव अधारा ॥

(१७)

राग — भैरवी

हरदम लेना अपने गुरुजी का नाम,
 यही नाम लेने से होगा सफल जनम । गुरुजी का नाम ॥
 भोर को जब तू जाग उठेगा ।
 पहले जय गुरुनाम जपना पड़ेगा ॥
 विपद संकट तेरा कुछ नहीं रहेगा ।
 जरूर मिलेगा तेरे दिल में आराम ॥
 कितना पाप तूने जनम भर किया ।
 अभी तक तुझे होश नहीं हुआ ॥
 कोई नहीं जाने कब दम छूटेगा ।
 नाम से बढ़ कर तेरा कुछ भी नहीं काम ॥
 गुरुजी का नाम जो प्रेम से जपता ।
 आखिर को काम केवल उसी का होता ॥
 सब छोड़ जो यही नाम में रहता ।
 उनके चरण में मेरा कोटि प्रणाम ॥

(१८)

राग — कैदारा

गुरुदेव माता, गुरु पिता, गुरुदेव स्वामी परमेश्वरा ।
 गुरुदेव सखा, अज्ञान भंजन, गुरुदेव बंधु सहोदरा ॥
 गुरुदेव दाता हरिनाम उपदेसै, गुरुदेव मन तु निरोधरा ।
 गुरुदेव शांति सतबुद्धि मूरत, गुरुदेव पारस परसपरा ॥
 गुरुदेव तीरथ अमृत सरोवरा, गुरुज्ञान मञ्जन अपरंपरा ।

गुरुदेव कर्ता सब पाप हरता, गुरुदेव पतित पवित्रकरा ॥
 गुरुदेव आदि जुगादि जुग-जुग, गुरुदेव मंत्र हरिजप उधरा ।
 गुरुदेव संगत प्रभु मेल कर किरपा ।

हम मूढ़ पापी जित लग तरा ॥

गुरुदेव सतगुरु पारब्रह्म परमेश्वर ।

गुरुदेव नानक हरि नमस्करा ॥

(१६)

गुरु कृपान्जन पाओ मेरे भाई

राम बिना कछु जानत नाही ।

अंतर रामा बाहिर रामा

जित देखूँ उत राम ही राम ॥

जागत राम, सोवत राम

सपने में देखत राम ही राम ।

एक जनार्दन नाम अनेकों,

जित देखूँ उत राम ही राम ॥

(२०)

ऐसी करी गुरुदेव दया ।

मेरे मोह का बंधन तोड़ दिया ॥

मैं तो दौड़ रहा. दिन रात सदा,

जग के सब काज विहारण में ।

सपने सम विश्व दिखाय मुझे,

मेरे चंचल चित्त को मोड़ दिया ॥

कोई शेष गणेश महेश रटे,
 कोई पूजत पीर पैगम्बर को ।
 सब पंथ गरंथ छुड़ा करके,
 इक ईश्वर में मन को जोड़ दिया ॥
 कोई ढूँढ़त है मथुरा नगरी,
 कोई जाय बनारस वास करे ।
 जब व्यापक रूप पिछान लिया,
 सब भरम का भंडा फोड़ दिया ॥
 मैं कौन करूं गुरुदेव की भेंट,
 न वस्तु दिखे तिहूं लोकन में ।
 ब्रह्मानंद समान न होय कभी,
 धन माणिक लाख करोड़ दिया ॥

— ब्रह्मानंद

(२१)

राग — गौड़ सारंग

ॐ प्रलय पयोधिजले धृतवानसि वेदम्
 विहित वहित्र चरित्रमखेदम् ।
 केशवधृत मीन शरीर जय जगदीश हरे ॥ १ ॥
 क्षितिरति विपुलतरे तवतिष्ठति पृष्ठे,
 धरणि धारण किणः चक्र गरिष्ठे ।
 केशवधृत कच्छपरूप जय जगदीश हरे ॥ २ ॥
 वसति दशन शिखरे धरणी तब लग्ना,
 शशिनि कलंक कलेव निमग्ना ॥

केशवधृत शूकररूप जय जगदीश हरे ॥ ३ ॥

तव करकमलवरे नखमद्भुत शृङ्गम्,

दलित हिरण्यकशिपु तनु भृंगम् ।

केशवधृत नरहरिरूप जय जगदीश हरे ॥ ४ ॥

छलयसि विक्रमेण बलिमद्भुत वामन,

पदनखनीरजनित जन पावन ।

केशवधृत वामन रूप जय जगदीश हरे ॥ ५ ॥

क्षत्रिय रुधिरमये जगदपगतपापम्,

स्नपयसि पयसि शमित भवतापम् ।

केशवधृत भृगुपतिरूप जय जगदीश हरे ॥ ६ ॥

वितरसिदिक्षुरणे दिकपति कमनीयम्,

दशमुख मौली बलिं रमणीयम् ।

केशवधृत रघुपतिरूप जय जगदीश हरे ॥ ७ ॥

वहसिवपुषि विशदे वसनं जलदाभम्,

हलहति भीति मिलित यमुनाभम् ।

केशवधृत हलधररूप जय जगदीश हरे ॥ ८ ॥

निंदसि यज्ञविधेरहङ्गश्रुति जातम्,

सदय हृदय-दर्शित पशुघातम् ।

केशवधृत बुद्धशरीर जय जगदीश हरे ॥ ९ ॥

म्लेच्छ निबह निधने कलयसि करवालम्,

धूमकेतुमिव किमपि करालम् ।

केशवधृत कल्कि शरीर जय जगदीश हरे ॥ १० ॥

श्री जयदेवकवेरिदमुदितमुदारम्,

शृणुसुखदं शुभदं भवसारम् ।

केशवधृत दशविधरूप जय जगदीश हरे ॥ ११ ॥

जय जगदीश हरे । जय जगदीश हरे ॥

(२२)

राग — गौड़ सारंग

प्रभुमीशमनीशमशेषगुणं,

गुणहीन महीश गराभरणम् ।

रणनिर्जितदुर्जय दैत्य पुरं,

प्रणमामि शिवं शिव कल्पतरुम् ॥ १ ॥

गिरिराज सुतान्वित वामतनुं,

तनुनिन्दित राजित कोटि विधुम् ।

विधि विष्णु शिरोधृत पाद युगं,

प्रणमामि शिवं शिव कल्पतरुम् ॥ २ ॥

शशलांछितरंजित सन्मुकुटं,

कटिलंबित सुंदरकृत्तिपटम् ।

सुर शैवालिनीकृत पूत जटं, .

प्रणमामि शिवं शिव कल्पतरुम् ॥ ३ ॥

नयन त्रय भूषितचारुमुखं,

मुखपद्मपराजित कोटिविधुम् ।

विधुखंडविमंडित भालतटं

प्रणमामि शिवं शिव कल्पतरुम् ॥ ४ ॥

वृषराज निकेतनमादिगुरुं,

गरलाशनमाजि विषाणधरम् ।

प्रमथाधिपसेवक रंजनकं,

प्रणमामि शिवं शिव कल्पतरुम् ॥ ५ ॥

मकरध्वज मत्तमातंग हरं,

करिचर्मगनाग विवोधकरम् ।

वरमार्गण शूल विषाण धरं,

प्रणमामि शिवं शिव कल्पतरुम् ॥ ६ ॥

जगदुद्भवपालन नाशकरं,

त्रिदिवेश शिरोमणि धृष्टपदम् ।

प्रियमानव साधु जनैक गतिं,

प्रणमामि शिवं शिव कल्पतरुम् ॥ ७ ॥

अनाथं सुदीनं विभो विश्वनाथ,

पुनर्जन्मदुःखात् परित्राहि शंभो ।

भजतोऽखिलदुःखसमूह हरं,

प्रणमामि शिवं शिव कल्पतरुम् ॥ ८ ॥

(२३)

जय शंख गदाधर नील कलेवर,

पीत पटांबर देहि पदम् ।

जय चंदन-चर्चित कुंतल मंडित,

कौस्तुभ लांछित देहि पदम् ॥ ९ ॥

जय पंकज लोचन मन-विमोहन,

पाप-विमोचन देहि पदम् ।

जय वेणु-निनादक रास विहारक,
बंकिम सुंदर देहि पदम् ॥ २ ॥

जय धीर धुरंधर अद्भुत सुंदर,
देव-सुदुर्लभ देहि पदम् ।

जय विश्व विमोहन मानस-मोहन
संस्थिति कारण देहि पदम् ॥ ३ ॥

जय भक्तजनाश्रय नित्य सुखालय,
अंतिम बांधव देहि पदम् ।

जय दुर्जय-शासन केलि-परायण,
कालिय-मर्दन देहि पदम् ॥ ४ ॥

जय नित्य निरामय, दीन-दयामय,
चिन्मय माधव देहि पदम् ।

जय पामर-पावन धर्मपरायण,
दानव-सूदन देहि पदम् ॥ ५ ॥

जय वेद-विमोचन श्री राधा रमण,
वृंदावन-धन देहि पदम् ।

जय सत्य सनातन दुर्गति भंजन
सज्जन रंजन देहि पदम् ॥ ६ ॥

जय सेवक वत्सल करुणा सागर,
वांछित पूरक देहि पदम्
जय पूत धरातल देव परात्पर,
सत्त्व गुणाकर देहि पदम् ॥ ७ ॥

जय गोकुल-भूषण कंस-निसूदन,
 शाश्वत जीवन देहि पदम् ।
 जय योग-परायण संसृति-कारण,
 ब्रह्म निरंजन देहि पदम् ॥ ८ ॥

(२४)

केशव कृष्ण अनंत विलास, अचिन्त्य विकाश अनिंद्य मुरारी ।
 सत्य सनातन नित्य निरंजन, जगजन हृदि वृंदावनचारी ॥
 सदानंद गोपाल ब्रजेश्वर, दीनबंधु नटराज शुभंकर ।
 राधावल्लभ हरि पीतांबर, मोहन नुपुर मुरली धारी ॥
 लीलामय नारायण सुंदर, पुरुषोत्तम निरूपम दीपंकर ।
 अखिल रसामृत मूर्ति मनोहर, पाप ताप भय बंधन हारी ॥

(२५)

राग — भैरवी

अधरं मधुरं वदनं मधुरम्, नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
 हृदयं मधुरं गमनं मधुरम्, मधुराधिपते रखिलं मधुरम् ॥ १ ॥
 वसनं मधुरं चरितं मधुरम्, वचनं मधुरं वलितं मधुरम् ।
 रचितं मधुरं भ्रमितं मधुरम्, मधुराधिपते रखिलं मधुरम् ॥ २ ॥
 वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरो, पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ ।
 नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं, मधुराधिपते रखिलं मधुरम् ॥ ३ ॥
 गीतं मधुरं पीतं मधुरं, भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम् ।
 रूपं मधुरं तिलकं मधुरं, मधुराधिपते रखिलं मधुरम् ॥ ४ ॥
 करणं मधुरं तरणं मधुरं, हरणं मधुरं स्मरणं मधुरम् ।
 बलितं मधुरं शभितं मधुरं, मधुराधिपते रखिलं मधुरम् ॥ ५ ॥

गुंजा मधुरा माला मधुरा, यमुना मधुरा वीचिर्मधुरा ।
 सलिलं मधुरं कमलं मधुरम् मधुराधिपते रखिलं मधुरम् ॥ ६ ॥
 गोपी मधुरा लीला मधुरा, राधा मधुरा मिलनं मधुरम् ।
 दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं, मधुराधिपते रखिलं मधुरम् ॥ ७ ॥
 गोपा मधुरा, गावो मधुरा, यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा ।
 दलितं मधुरं फलितं मधुरं, मधुराधिपते रखिलं मधुरम् ॥ ८ ॥

(२६)

श्री रामचंद्र स्तुतिः

नमामि भक्तवत्सलं कृपालु शील कोमलं
 भजामि ते पदांबुजं अकामिनां स्वधामदं ।
 निकाम श्याम सुंदरं भवांबुनाथ मंदरं
 प्रफुल्ल कंज लोचनं मदादि दोष मोचनं ॥ १ ॥
 प्रलंब बाहु विक्रमं प्रभोऽप्रमेय वैभवं
 निषंग चाप सायकं धरं त्रिलोक नायकं ।
 दिनेश वंश मंडनं महेश चाप खंडनं
 मुनींद्र संत रंजनं सुरारि वृंद भंजनं ॥ २ ॥
 मनोज वैरि वंदितं अजादि देव सेवितं
 विशुद्ध बोध विग्रहं समस्त दूषणापहं ।
 नमामि इंदिरा पतिं सुखाकरं सतां गतिं
 भजे सशक्ति सानुजं शची पति प्रियानुजं ॥ ३ ॥
 त्वदंग्रि मूल ये नरा भजंति हीन मत्सराः
 पतंति नो भवार्णवे वितर्क वीचि संकुले ।
 विविक्त वासिनः सदा भजंति मुक्तये मुदा
 निरस्य इंद्रियादिकं प्रयांति ते गतिं स्वकं ॥ ४ ॥

तमेकमद्भुतं प्रभुं निरीहमीश्वरं विभुं

जगद्गुरुं च शाश्वतं तुरीयमेव केवलं ।

भजामि भाव वल्लभं कुयोगिनां सुदुर्लभं

स्वभक्त कल्प पादपं समं सुसेव्यमन्वहं ॥ ५ ॥

अनूप रूप भूपतिं नतोऽहमुर्विजा पतिं

प्रसीद मे नमामि ते पदाब्ज भक्ति देहि मे ।

पठन्ति ये स्तवं इदं नरादरेण ते पदं

व्रजन्ति नात्र संशयं त्वदीय भक्ति संयुताः ॥ ६ ॥

—इति श्रीमत् गोस्वामी तुलसीदास कृता श्री रामचंद्र स्तुतिः संपूर्णा ॥

(२७)

श्रीरुद्राष्टकम्

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं

विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं ।

निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं

चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ॥ १ ॥

निराकारमोङ्कारमूलं तुरीयं

गिरा ज्ञान गोतीतमीशं गिरीशं ।

करालं महाकाल कालं कृपालं

गुणागार संसारपारं नतोऽहं ॥ २ ॥

तुषाराद्रि संकाश गौरं गंभीरं

मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं ।

स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा

लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा ॥ ३ ॥

चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं

प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालं ।

मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं

प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि ॥ ४ ॥

प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं

अखंडं अजं भानुकोटि प्रकाशं ।

त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं

भजेऽहं भवानी पतिं भावगम्यं ॥ ५ ॥

कलातीत कल्याण कल्पांतकारी

सदा सञ्जनानंददाता पुरारी ।

चिदानंद संदोह मोहापहारी

प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ॥ ६ ॥

न यावद् उमानाथ पादार विंदं

भजंतीह लोके परे वा नराणां ।

न तावत्सुखं शांति संतापनाशं

प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं ॥ ७ ॥

न जानामि योगं जपं नैव पूजां

नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं ।

जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं

प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो ॥ ८ ॥

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये

ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शंभुः प्रसीदति ॥

॥ श्री गोस्वामी तुलसीदास कृतं श्रीरुद्राष्टकम् ॥

(२८)

भवान्यष्टकम्

न तातो न माता न बंधुर्न दाता
 न पुत्रो न पुत्री न भृत्यो न भर्ता ।
 न जाया न विद्या न वृत्तिर्ममैव
 गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ १ ॥

भवाब्धावपारे महादुःखभीरुः
 पपात प्रकामी प्रलोभी प्रमत्तः
 कुसंसारपाशप्रबद्धः सदाहं
 गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ २ ॥

न जानामि दानं न च ध्यान योगं
 न जानामि तंत्रं न च स्तोत्रमंत्रम् ।
 न जानामि पूजां न च न्यासयोगं
 गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ ३ ॥

न जानामि पुण्यं न जानामि तीर्थं
 न जानामि मुक्तिं लयं वा कदाचित् ।
 न जानामि भक्तिं व्रतं वापि मात
 गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ ४ ॥

कुकर्मी कुसंगी कुबुद्धिः कुदासः
 कुलाचारहीनः कदाचारलीनः ।
 कुदृष्टिः कुवाक्यप्रबंधः सदाहं
 गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ ५ ॥

प्रजेशं रमेशं महेशं सुरेशं
 दिनेशं निशीथेश्वरं वा कदाचित् ।
 न जानामि चान्यत् सदाहं शरण्ये
 गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ ६ ॥
 विवादे विषादे प्रमादे प्रवासे
 जले चानले पर्वते शत्रुमध्ये ।
 अरण्ये शरण्ये सदा मां प्रपाहि
 गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ ७ ॥
 अनाथो दरिद्रो जरारोगयुक्तो
 महाक्षीणदीनः सदा जाड्यवक्त्रः ।
 विपत्तौ प्रविष्टः प्रणष्टः सदाहं
 गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥ ८ ॥
 ॥ श्रीमच्छङ्कराचार्य कृतं ॥

(२६)

श्री जगन्नाथ दशकम्

कदाचित् कालिंदी तट विपिन संसर्गिभवने
 मुदाऽऽभीरीनारी - वदनकमलाऽऽस्वाद मधुपः ।
 रमा - शम्भू ब्रह्मा - सुरपति - गणेशोर्चित पदो
 जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ १ ॥
 करे सव्ये वेणुं शिरसि शिखिपिच्छं कटितटे
 दुकूलं नेत्रांते सहचरिकटाक्षं विदधते ।
 सदा श्रीमद्वृंदावने - विपिन - लीलापरिचयो
 जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ २ ॥

महान्भोधेस्तीरे कनकरुचिरे नीलशिखरे
वसन् प्रासादांतः सहज-वलभद्रेण वलिना ।

सुभद्रा - मध्यस्थः सकल-सुर-सेवावसरदो

जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ३ ॥

कृपा-पारावारः सजल-जलद-श्रेणि-रुचिरो

रमावाणी - सेव्यः स्फुरदमल - पङ्केरुहपदः ।

सुरेन्द्रैराराध्यः श्रुतिगण - शिखागीत - चरितो

जगन्नाथः स्वामी नयन पथगामी भवतु मे ॥ ४ ॥

परब्रह्मापीडः कमल-वदनोत्फुल्ल - नयनो

निवासी नीलाद्रौ निहित चरणौऽनन्त शिरसि ।

रसानन्दो राधा - सरस - वपुरालिंगन - सुखी

जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ५ ॥

रथारूढो गच्छन् पति - मिलितभूदेवपटलैः

स्तुतः प्रादुर्भावं प्लुतपदमूपाकर्ण्य सदयः ।

दयासिन्धुर्वन्धुः सकल जगतां मुग्धसदयो

जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ६ ॥

हर त्वं संसारं द्रुततममसारं सुरपते

हर त्वं पापानां विततिमपरां यादवपते ।

अहं याचे नित्यं परममचलं निश्चितमिदं

जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ७ ॥

न च प्राप्यं राज्यं न च कनकमाहो न विभवं

न याचेऽहं रम्यां निखिलवरकाम्यां वरवधूम् ।

सदा काले कामं प्रमथपतिनोद्गीत चरितो

जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ८ ॥

घनश्यामाकारः सुरमधुरधामा भव पिता
 महेंद्रादेराधो वररमणराधार्पित तनुः ।
 लसच्छीवत्साङ्क स्तरुण-तुलसीमाल्य-सुभगो
 जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ६ ॥

सदानंदाकारो जगति जगतां किल्विलहरो
 जगन्मूलाधारो जलधि - तनया सेवितपदः ।
 जरामृत्युध्वंसी जलदपटलश्यामलरुचिः
 जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ १० ॥
 ॥ श्री चैतन्य महाप्रभु कृतं ॥

(३०)

श्री चैतन्यमहाप्रभु अष्टकम्

उज्ज्वलवरण गौरवर देहं
 विलसति निरवधि भाव विदेहं ।
 त्रिभुवन - पावन - कृपया लेशं
 तं प्रणमामि च श्री शचीतनयम् ॥ १ ॥
 गद गद - अंतर भाव विकारं
 दूर्जन - तर्जन नाद विशालम् ।
 भव - भय - भंजन कारण - करुणं
 तं प्रणमामि च श्री शचीतनयम् ॥ २ ॥
 अरुणांबरधर चारु कपोलं
 इंदु विनिन्दित नखचय रुचिरं ।
 जल्पित निजगुण नाम विनोदं
 तं प्रणमामि च श्री शचीतनयम् ॥ ३ ॥

विगलित नयन कमल - जलधारं

भूषण - नवरस - भाव - विकारं ।

गति अति मंथर - नृत्य विलासं

तं प्रणमामि च श्री शचीतनयम् ॥ ४ ॥

चंचल - चारु चरण गति - रुचिरं

मंजीर - रंजित - पद्मयुग - मधुरं ।

चंद्र विनिन्दित शीतल वदनं

तं प्रणमामि च श्री शचीतनयम् ॥ ५ ॥

धृतकटिडोर - कमण्डलु दण्डं

दिव्य - कलेवर - मुण्डितमुंडं ।

दूर्जन - कल्मष - खण्डन दण्डं

तं प्रणमामि च श्री शचीतनयम् ॥ ६ ॥

भूषण - भूरज अलकावलितं

कम्पित - बिम्बाधरवर रुचिरं ।

मलयज - विरचित - उज्ज्वल - तिलकं

तं प्रणमामि च श्री शचीतनयम् ॥ ७ ॥

निन्दित - अरुण कमलदल लोचनं (नयनं)

आजानुलंबित - श्रीभुजयुगलं ।

कलेवर कैशोर - नर्तक वेशं

तं प्रणमामि च श्री शचीतनयम् ॥ ८ ॥

॥ श्री सार्वभौमभट्टाचार्य कृतं ॥

(३१)

राग—भैरवी

देवि सूरेश्वरि भगवति गंगे, त्रिभुवनतारिणि तरल तरंगे ।
 शंकरमौलिदिहारिणि विमले, मम मतिरास्तां तव पदकमले ॥ १ ॥
 भागीरथि सुखदायिनि मातस्तव जलमहिमा निगमे ख्यातः ।
 नाहं जाने तव महिमानं त्राहि कृपामयि माम-ज्ञानम् ॥ २ ॥
 हरिपाद पद्म तरंगिणि गंगे हिम विधूमूक्ताधवल तरंगे ।
 दूरीकुरु मम दूष्कृतिभारं कुरु कृपया भवसागर पारम् ॥ ३ ॥
 पतितोद्धारिणि जाह्नवी गंगे, खंडितगिरिवरमंडितभंगे ।
 भीष्मजननिखलु मुनिवरकन्ये, पतित निवारिणि त्रिभुवनधन्ये ॥ ४ ॥
 रोगं शोकं पापं तापं हर मे भगवति कुमति कलापम् ।
 त्रिभुवनसारे वसुधाहारे त्वमसि गतिर्मम खलु संसारे ॥ ५ ॥

(३२)

राग—भैरवी

तू ही भक्त सखा जगवन्दन हो, दीन दरद दुःख भंजन हो ।
 आश्रित जन भव खंडन हो, भक्त सखा जगवंदन हो ॥
 अधम तारण कारण हो, विचित्र दिव्य तनु धारण हो ।
 गैरिक-अंबर जटाजूट शोभन हो, जाचत चित्ततुआ चरण हो ॥
 तू ही तू ही नाथ भुवनैक बंधु, तुही तुही नाथ करुणैक सिंधु ।
 तू ही दीन बंधु तूहि दयाघन, सद्गुरु ब्रह्म सनातन हो ॥

-भक्तसखा जगवंदन हो ।

(३३)

ॐ जय जगदीश हरे स्वामी जय जगदीश हरे ।

भक्तजनों के संकट क्षण में दूर करे ॥

जो ध्यावे फल पावे (स्वामी) दुख विनसै मन का ।

प्रेम भक्ति घर आवे कष्ट मिटै मन का ॥

माता पिता तुम मेरे शरण पड़ूँ (मैं) किस की (प्रभु) ।

तुम बिन और न दूजा (प्रभु), आस करूँ किसकी ॥

तुम पूरण परमात्मा, तुम अंतर्दामी ।

पारब्रह्म परमेश्वर तुम सबके स्वामी ॥

तुम करुणा के सागर, तुम पालनकर्ता ।

मैं मूरख खल कामी कृपा करो भर्ता ॥

तुम हो एक अगोचर, सबके प्राण पति ।

किस विधि मिलूँ गोसांई, तुमको मैं कुमति ॥

दीनबंधु दुःखहर्ता, ठाकुर तुम मेरे ।

करुणा हस्त बढ़ाओ, शरण पड़ा तेरे ॥

विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा ।

श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, संतन की सेवा ॥

(३४)

राग—यमन

श्रीरामचंद्र कृपालु भजुमन, हरण भवभय दारुण ।

नव कंजलोचन कंजमुख, कर कंज पद कंजारुण ॥

कंदर्प अगणित अमित छवि, नव नील नीरज सुंदरम् ।

पट पीत मानहुं तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक सुतावरम् ॥

भजु दीनबंधु दिनेश दानव दैत्य वंश निकंदनम् ।
 रघुनंद आनंद कंद कोशल चंद दशरथ नंदनम् ॥
 सिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदारु अंग विभूषणं ।
 आजानुभुज शरचापधर संग्राम जित खरदूषणं ॥
 इति वदति तुलसीदास शंकर शेष मुनि मन रंजनम् ।
 मम हृदय कंज निवास कुरु कामादि खलदल गंजनम् ॥

(३५)

हरि से लागि रहो रे भाई, तेरी बनत बनत बनि जाई,
 तेरी बिगड़ी बात बनि जाई ॥
 अंका तारे बंका तारे, तारे सदन कसाई ।
 सुआ पद्म के गणिका तारे, तारे मीरा बाई ॥
 दौलत दुनिया माल खजाना, बनिया बैल चढ़ाई ।
 एक बात में ठंठा लागे, खोज खबर नहीं पाई ॥
 ऐसी भक्ति कर घट भीतर, छोड़ कपट चतुराई ।
 सेवा बंदन और अधीनता, सहज मिले गोसांई ॥

(३६)

राग — भैरवी

सुंदरलाला नंद दुलाला, नाचे श्री हरि कीर्तन में ।
 भाले चंदन तिलक मनोहर, अलका शोभे कपोल में ॥
 शिरे चूड़ा करतालि रोले, गले फूलमाला हिया पर दोले ।
 पहिरन पीत-पटांबर सोहे, रुनु-झुनु नुपुर चरण में ॥
 कोई गावत है पंचम तान, कृष्ण मुरारे हरि के नाम ।

मंगल ताल मृदंग रसाल, बजाता है कोई रंग में ॥
 राधा-कृष्ण एक तनु है, निधुवन में जो रंग मचावे ।
 विश्वरूप प्रभुजी सोही, अबतँह प्रकटहि नदिया में ॥

(३७)

राग—दरबारी

मनुआ भजले सीताराम, मनुआ भजले सीताराम ।
 दीन दिया जो हरि गुण गाले, गुरु दिया जो नाम ॥
 रामचंद्र है अंतर्दामी, सबकी मजरा लीजै ।
 जो नर जैसा करम करे, प्रभु तैसा फल दीजै ॥
 लड़का वाला लालन पालन, उन्हें भी दूध पिलावे ।
 वो ही लड़का मरे पिता की, मुख पे आग लगावे ॥
 तीर्थ तीर्थ में घूम फिरे हो, दे दरशन भगवान ।
 घर पे बैठे राम का नाम तेरा, तीरथ चारों धाम ॥
 एक नर भूलै दो नर भूलै, भूलै जगत संसार ।
 जान सुन के जो नर भूलै, उनको नाहिं पार ॥

(३८)

राग—देश

तू दयालु दीन हौं, तू दानी हौं भिखारी ।
 हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी ॥
 नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मो सो ।
 मो समान आरत नहिं, आरतिहर तों सो ॥
 ब्रह्म तू, जीव हौं, तू ठाकुर हौं चरो ।
 तात मात गुरु सखा, तू सब विधि हित् मेरो ॥

तोहि मोहि नाते अनेक, मानिए जो भावै ।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु, चरण सरण पावै ॥

(३६)

हरिनाम सुमर सुखधाम जगत में,
जीवन दो दिन का ।
जीवन दो दिन का, जगत में जीवन दो दिन का ॥
पाप कपट कर माया जोड़ी, गरब करे धन का ।
सभी छोड़ कर चला मुसाफिर, बास हुआ बन का ॥
सुंदर काया देख लुभाया, लाड़ करे तन का ।
काल बली का लगे तमाचा, भूल जाय सब धन का ॥
यह संसार स्वपन की माया, मेला पल छिन का ।
ब्रह्मानंद भजन कर बंदे, नाथ निरंजन का ॥

(४०)

हरि दीनदयाल दया कर के,
भव सागर से कर पार मुझे ॥
प्रभु नीर अपार न तीरे दिखे,
किम धीर धरुं अब मैं मन में ।
मेरी नाव डुबाय रही जल में,
शरणागत जान के तार मुझे ॥
ग्रह बसे बलवान बड़े,
जल घेर पड़े बहु मारग में ।
अब बह रही विपरीत हवा,
तुंहु एक बचावन हार मुझे ॥

प्रभु छूट गया सब साथ मेरा,
 कुछ हाथ में जोर रहा भी नहीं ।
 अब नाथ न देर लगाय जरा,
 निज बाहु पसार उबार मुझे ॥
 हरिनाम जहाज बड़ा जग में,
 सब वेद पुराण बतावत है ।
 ब्रह्मानंद जपूँ दिन रात सदा,
 प्रभु कीजिए पार किनार मुझे ॥

(४१)

श्री जटिया बाबा (भजन)

जटिया बाबा हो बाबा की मुरतिया मन में राखो हो,
 बाबा की सुरतिया मन में राखो हो ॥ टेक ॥
 नदिया जिले में जन्मे बाबा, शांतिपुर मोकाम
 छुटपन में बड़ी उधम मचायो, लूटे माखन खीर ॥ १ ॥
 जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥
 श्यामसुंदर से खेले जब-तब, दर्शन पा के अधीर
 मन्दिर जावे भोग लगावे, दूध पिलावे निःसृत ॥ २ ॥
 जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥
 कलकत्ता में संस्कृत पढ़ के, शास्त्र पढ़े अनेक
 ब्राह्म समाज में निरगुण ब्रह्म को ध्यावे मन निःसृत ॥ ३ ॥
 जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥
 ब्राह्म समाज में मिली न शांति मन में उपजा खेद
 इधर-उधर संतन संग, मन में पावे विवेक ॥ ४ ॥

जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥

व्याकुल हो कर सद्गुरु कारण, भरमे नाना देश
गया धाम में रहते बाबा, सद्गुरु पावे आदेश ॥ ५ ॥

जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥

काशी जा कर धरिये बाबा सन्यासिन के वेश
उसी समय से दीक्षा दे कर तारे नाना देश ॥ ६ ॥

जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥

ढाका जा कर आसरम करिके, आवे देश के लोग ॥ ७ ॥
नाना संशय पाप नाश कर, तारे नाना लोग

जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥

आश्रम में हैं बैठे बाबा, आम पेड़ के नीचे
बूंद-बूंद कर अमृत बरसे अचरज माने लोग ॥ ८ ॥

जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥

समाधि देखन नित किर्तन में आवे नाना लोग
कीरतन में सब आनंद पावे, नाचे भाव में लोग ॥ ९ ॥

जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥

काशी मथुरा वृंदावन देखी, देखी तीरथ राज
दर्शन दे कर कुंभ मेले में, तारे योगी राज ॥ १० ॥

जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥

भक्तों को नित शिक्षा देकर नाम करे उपदेश
अजपा जप की दीक्षा पा कर तर गए सारे देश ॥ ११ ॥

जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥

पुरी पहुंचे जटिया बाबा दान दियो अनेक
पंडे पुरहित साधुन सबको, वस्त्र दिए अनेक ॥ १२ ॥

जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥

जगन्नाथ की दर्शन कीन्ही, गंभीरा लोकनाथ
महाप्रसाद की अन्न पा कर, तृप्त भए सब लोग ॥ १३ ॥

जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥

बंद करिके वानर मारन, पूजा करे महावीर
वानर पक्षी भोजन पावे, शिक्षा देवे नीत ॥ १४ ॥

जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥

खातिर बढ़ गई जटिया बाबा की पुरी में चहुं ओर
दुष्ट लोगन की ईर्ष्या बढ़ गई बाबा की देख भीड ॥ १५ ॥

जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥

जहर खिला कर मारन की, पापी करे विचार
सब कुछ जान कर अंतरयामी, रह गए निर्विकार ॥ १६ ॥

जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥

जहर दिया पापी लोगों ने, कह कर महाप्रसाद
सभी जान कर बाबा खा गए, भक्त करे हाहाकार ॥ १७ ॥

जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥

नीलकंठ बन बाबा रह गए, भक्तन रोवे अधीर
शरीर छोड़ दी महिने बाद में, चंदन ताल के तीर ॥ १८ ॥

जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥

मन्दिर बन गई चंदन ताल में, नित आवे सब लोग
दर्शन कर के समाधि मंदिर, भक्तन रोवे अधीर ॥ १९ ॥

जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥

जटिया बाबा को दर्शन कर के, तर गए अगणित लोग
अजपा जप से तर जावेंगे, पहुँचेंगे उनके देश ॥ २० ॥

जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥

नित्य कीर्तन में प्रगटें बाबा, भक्तों से है प्रेम
दर्शन दें कभी प्रसाद रूप में, कृपा पावे सब लोग ॥ २१ ॥

जटिया बाबा हो..... ॥ टेक ॥

(४२)

राग — भैरवी

जय दुर्गे दुर्गति परिहारिणी, शुंभ विदारिनी मात भवानी ।
आदि शक्ति परब्रह्म स्वरूपिणी, जगजननी चहुं वेद बखानी ॥
ब्रह्मा शिव हरि अर्चन कीनो, ध्यान धरत सुर नर मुनि ज्ञानी ।
अष्ट भुजा कर खड्ग विराजे, सिंह सवार सकल वर दानी ॥
ब्रह्मानंद शरण में आयो, भव भय नाश करो महारानी ॥

(४३)

हे गोविंद राखो शरण, अब तो जीवन हारे ॥
नीर पीवन हेत गयो, सिंधु के किनारे ।
सिंधु बीच बसत ग्राह, चरन धरि पछारे ॥
चार प्रहर युद्ध भयो, ले गयो मझधारे ।
नाक कान डूबन लागे, कृष्ण कहि पुकारे ॥
द्वारका में शब्द भयो, कृष्ण गरुड़ चढ़ि सिधारे ।
ग्राह को हरि मार के, गजराज को उबारे ॥
सूरश्याम मगन भये, नंद के दुलारे ।
तेरो मेरो न्याय है, यमराज के दुवारे ॥

(४४)

झिंझिट — भजन

ठुमकि चलत रामचंद्र, राजत पैजनिया ॥
 किलकिलाई उठत धाये, गिरत भूमि लटपटाये ।
 धाई मातु गोद लेत, दशरथ की रानियाँ ॥
 अंचल रज अंग लाई, विविध भांति सो दुलार ।
 तन-मन-धन बार-बार, बोलत मृदु बानियाँ ॥
 तुलसीदास अति आनंद, हेरत मुखारविन्द ।
 रघुवर छवि के समान, रघुवर छवि बनियाँ ॥

(४५)

दरबारी — कनाड़ा

जिनके हृदि में श्रीराम बसे,
 उन साधन और किए न किए ।
 सब भूत दया जिनके चित में;
 उन कोटन दान दिए न दिए ॥
 जिन संत चरण रज को परसा,
 उन तीरथ नीर पिए न पिए ।
 जिन राम दयाल ध्यान धरे,
 उन राम का नाम लिए न लिए ॥

(४६)

मिश्र — भीमपलश्री (भजन)

दे दर्शन भगवान, प्रभु कर सब दुःख दूर हमारे ।
 शरण पड़े हम दास तुम्हारे ॥

सकल जगत तुमने उपजाया, तुम ही हो प्रतिपालन हारे ।
 सकल व्यापक अंतर्यामी, ध्यावत सुर नर मुनि गन सारे ॥
 नाम तुम्हारो सब सुखदायक, सकल दोष भय पाप निवारे ।
 सत् चित् आनंद रूप पिछानो, ब्रह्मानंद सदामन धारे ॥

(४७)

श्रैरवी

राम राम गाओ संतो, राम राम गाओ ।
 राम राम गाई गाई, राम को रिझाओ ॥
 रामहि को नाम जापो, रामहि को ध्यावो ।
 राम राम राम कहत, प्रमुदित ह्वै जाओ ॥
 राम राम सुनि सुनाइ, हिय अति हुलसायो ।
 राम राम राम रटत, सब विधि सुख पाओ ॥
 राम नाम अमिय पीयो, विषय मद भुलाओ ।
 राम सुरस पीय पीय, तन सुधि बिसरायो ॥
 राम आदि मध्य राम, राम अंत पायो ।
 राम अखिल जगत रूप, राम में समायो ॥

(४८)

रघुवर तुमको मेरी लाज ।

सदा सदा मैं शरण तिहारी,

तुम ही गरीब निवाज ॥

पतित उधारन विरद तुम्हारो,

श्रवणन सूनी आवाज ।

हैं तो पतित पुरातन कहिए,

पार उतारो जहाज ॥

अघ खंडन दुःख भंजन जनके,

यही तिहारो काज ।

तुलसीदास पर कृपा करिए,

भगति दान देहु आज ॥

(४६)

मंगल मूरति मारूतनंदन, सकल अमंगल मूल निकंदन ।

पवन तनय संतन हितकारी, हृदय विराजत अवध बिहारी ॥

मातु-पिता गुरु गनपति शारदा, सिवा समेत शंभु शुक नारद ।

चरन बंदि बिनवौ सब काहु, देहु रामपद नेहु निबाहु ॥

वन्दौ राम लखन वैदेही, जो तुलसी के परभ सनेही ॥

(५०)

बीत गये दिन भजन बिना रे ॥

बाल अवस्था खेल गँवायो,

जब जवानी तब मान घना रे ।

बीत गये दिन भजन बिना रे ॥

लोभ के कारण मूल गँवायो,

अजहूँ न गई मन की तृष्णा रे ।

बीत गए दिन भजन बिना रे ॥

कहत कबीर सुनो भई साधो,

पार उतर गए संत जना रे ।

बीत गए दिन भजन बिना रे ॥

(५१)

राग—केदार

चरन - कमल बंदौ हरि राई ।
 जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै,
 अंधे को सब कछु दरसाई ॥
 बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै,
 रंक चले सिर छत्र धराई ।
 सूरदास स्वामी करुणामय,
 बार बार बंदौ तेहि पाई ॥

(५२)

सोई रसना जो हरि गुन गावै ।
 नैनन की छवि यहि चतुरता,
 जो मकरंद मुकुन्दहि ध्यावै ॥

निर्मल चित्त तो सोई साँचो,
 कृष्ण बिना जिहि और न भावै ।
 श्रवनन की जू यहि अधिकाई,
 सुनि हरि कथा सुधारस पावै ॥

कर तेई जे स्यामहि सेवैं,
 चरननि चलि वृंदावन जावै ।
 सूरदास जय बलि ताके,
 जो हरि जू सौं प्रीति बढावै ॥

(५३)

काफी — भैरवी

प्रभु मेरो अवगुण चित न धरो,
 समदरसी प्रभु नाम तिहारो ।
 अपने पनहि करौ,
 प्रभु मेरे अवगुन चित न धरो ॥

इक लोहा पूजा में राखत,
 इक घर बधिक परो ।
 यह दुविधा पारस नहीं जानत,
 कंचन करत खरो ॥

एक नदिया एक नार कहावत,
 मैलो नीर भरो ।
 जब मिल कै दोउ एक बरन भये,
 सुर सरि नाम परो ॥

एक जीव एक ब्रह्म कहावत,
 सूर श्याम झगरौ ।
 अबकी बेर मोही पार उतारो,
 नहीं पन जात टरो ॥

(५४)

राग — झिंझिट (भजन)

सीता पति रामचंद्र रघुपति रघुराई ।
 भजले अयोध्यानाथ दूसरा न कोई ॥

हसन बोलन चतुर चाल, अयन बयान दृग बिसाल ।
 भृकृटि कुटिल तिलक भाल, नासिका सोहाई ॥
 मोतिन को कंठमाल, तारा गण उर बिसाल ।
 श्रवण कुंडल झलमलात, रति पति छबि छाई ॥
 सखा सहित सरयू तीर, विहरे रघुवंश वीर ।
 तुलसीदास हरष निरखि, चरन रज पाई ॥

(५५)

सुंदर रघुवर हे चिर सुंदर
 भाले तिलक वन माला ।
 प्रभुजी मानस नयन बिहारी ॥
 आजानु लंबित करे धनु शोभित
 शिरे जटाजूट बल्कल धारी ।
 प्रभुजी मानस नयन बिहारी ॥
 कौशल चंद्र, दशरथ नंदन
 बसो प्रभु अवध बिहारी ।
 प्रभुजी मानस नयन बिहारी ॥

(५६)

राग — पीलूबरवा

बंधुगणो मिल कहो प्रेम से,
 रघुपति राघव राजा राम ।
 मुदित नेत्र से करो ध्यान,
 पुनि पतित पावन सीता राम ॥
 जिह्वा जीवन सफल करो कह,

जय रघुनंदन जय घनश्याम ।
 हृदय खोलो बोलो मत चूको,
 जानकी बल्लभ सीता राम ॥
 गौर रुचिर घनश्याम छवि,
 जय लक्ष्मण जय जय सिया राम ।
 अनुगत परम अनुज रघुवर के,
 भरत शत्रुहन शोभा धाम ॥
 उभय सखा रघुवर के प्यारे,
 कपिपति लंकापति अभिराम ।
 परम भक्त निष्काम शिरोमणि,
 जय श्री मारुति पूरन काम ॥
 अति उमंग से बोलो संतत,
 रघुपति राघव राजा राम ।
 मुक्त कंठ से सदा पुकारो,
 पतित पावन सीता राम ॥

(५७)

नाचे आर हरि बोले गौर निताई ।
 (आमार) गौर निताई नाचे अद्वैत गोसांई । ।
 —हरि बोल बोले रे,
 —प्रेमे विभोर होय रे,
 (आमरा) एमन दयाल ठाकुर, आर देखि नाई । ।
 —गौर निताई एर मतोरे (एमन दयाल....)
 —तारा जेचे जेचे प्रेम विलाय

—तारा जातिर विचार करे ना रे
 —तारा आ चंडाले हरि बलाय
 —तारा पापी तापी खूँजे बेझाय रे
 —तारा पतित देखे कोल देय रे
 —तारा दयाले रो शिरोमणि
 —तारा मार खेयो प्रेम जाचे
 आमरा एमन दयाल ठाकुर आर देखि नाई ।
 नाचे आर हरि बोले गौर निताई ॥
 एमोन दयाल तारा एमोन दयाल
 सीतानाथेर मोतन रे
 —जे आनिलो गौरमणि
 —कतो गंगाजल तुलसी दिये
 —जे आनिलो गौरमणि
 —कतो असाध्य साधना करे
 —जे आनिलो गौरमणि
 कलि जीवेर दशा मलिन देखे
 —जे आनिलो गौरमणि
 आमरा एमोन दयाल ठाकुर आर देखिनाई ।
 नाचे आर हरि बोले गौर निताई ॥

बंगला शब्दार्थ- मतारे = के समान । देखिनाई = नहीं देखा है । जेचे जेचे = अपने से ।
 बलाय = कहवाते हैं । खूँजे बेझाय = ढूँढ़ कर भ्रमण करते हैं । जाचे = देना । प्रेम विलाय = प्रेम
 देते हैं । आमरा = हमलोग । एमोन = ऐसे । आर = और । जे आनिल = जिसने लाया था । १ ।
 = कितना । गौर = वैतन्य महाप्रभु । निताई = नित्यानंद महाप्रभु ।

(५८)

चाई आनंद चाई प्रेम चाई हरिर नाम निबिके ।
 हरिर नामेर फेरीवाला नितूई नितूई जाय डेके ॥
 आलो कोरे गंगार घाट, एई मिलेछे चांदेर हाट ।
 (तोरा) देखवि जदि श्यामचांदेर हाट, चोखेर कपाट खूले दे ॥
 सहज ठाकुर सहज नाम, सहज ताँहार सकल काम ।
 सहज साधन सहज ताँर प्रेम, सहज होले पाय ताँके ॥
 एतो जे मेरे छे माधा, से कथा तो मने नाई ।
 तभू डाके आय काछे आय, एमन दयाल आछे के ॥
 चिनि संदेश फूल बतासा, हरिर नामे छड़िए दे ।
 आमरा सबाई लूटे खाई भाई, एई हरिनाम गाई मुखे ॥

बंगला शब्दार्थ- चाई = कौन चाहता है? निबिके = कौन लेगा। नितूई जाय डेके = नित्य पुकार जाता है। आलो कोरे = प्रकाशित कर के। ताके = उन्हें। होले = होने से। एई मिलेछे चांदेर हाट = मानो चंद्रमा का हाट लगा है। देखबी जदि = यदि देखना है। चोखेर कपाट = आँखों का पर्दा। ताँहार = उनका। एतो जे मेरे छे = इतना जो मारा था। छड़िये दे = बिखेर दे।

(५९)

राग — भैरवी

भज मन राम चरण सुख दाई । ।
 जिहि चरणन से निकसी सुरसरि, शंकर जटा समाई ।
 जटा शंकरी नाम परयो है, त्रिभुवन तारन आई ॥
 जिन चरणन की चरन पादुका, भरत रह्यो लव लाई ।
 सोई चरण केवट धोई लीने तब हरि नाव चलाई ॥
 सोई चरण संतन जन सेवत, सदा रहत सुखदाई ।

सोई चरण गौतम ऋषि नारी परसि परन पद पाई ॥
 दण्डक वन प्रभु पावन कीन्हों, ऋषयन त्रास मिटाई ।
 सोई प्रभु त्रिलोक के स्वामी, कनक मृगा संग धाई ॥
 कपि सुग्रीव बंधु भय व्याकुल, तिन जय छत्र फिराई ।
 रिपु को अनुज विभीषण निसिचर परसत लंका पाई ॥
 सिव सनकादिक अरु ब्रह्मादिक सेष सहस मुख गाई ।
 तुलसिदास मारुतसुत की प्रभु निज मुख करत बड़ाई ॥

(६०)

राग—दरबारी

प्रेम मुदित मन से कहो, राम राम राम ।

श्री राम राम राम, श्री राम राम राम ॥

पाप कटे दुःख मिटे, लेके राम नाम ।

भव समुद्र सुखद नाव एक राम नाम ॥

—कहो राम राम राम, श्री राम राम राम ॥

परम शांति सुख निदान, नित्य राम नाम ।

निराधार को आधार एक राम नाम ॥

—कहो राम राम राम, श्री राम राम राम ॥

परम ईष्ट परम गोप्य मंत्र राम नाम ।

संत हृदय सदा बसत एक राम नाम ॥

महादेव सतत जपत दिव्य राम नाम ।

काशी मरत मुक्त करत कहत राम नाम ॥

—कहो राम राम राम, श्री राम राम राम ॥

माता पिता बंधु सखा, सबहिं राम राम ।

भक्त जनन जीवनधन एक राम नाम ॥

—कहो राम राम राम, श्री राम राम राम ॥

(६१)

भज राधेकृष्ण गोविंदम, भज राधे राधे गोविंदम ।

भज मुरलीधारी गोविंदम, भज गिरिवरधारी गोविंदम ॥

भज हृदय बिहारी गोविंदम, भज जमुना विहारी गोविंदम ।

भज कृष्ण मुरारी गोविंदम, भज मथुरा विहारी गोविंदम ॥

भज गोकुल बिहारी गोविंदम—

—भज गोविंदम, भज गोविंदम, गोविंदम भज गोविंदम ॥

भज हरे मुरारे गोविंदम, भज कृष्ण मुरारे गोविंदम ।

भज कृष्ण पियारे गोविंदम, भज नंद दुलारे गोविंदम ।

भज नयनन तारे गोविंदम—

—भज गोविंदम; भज गोविंदम, गोविंदम भज गोविंदम ॥

भज संतनं तारन गोविंदम, भज तन मन रंजन गोविंदम ।

भज भव दुःख भंजन गोविंदम—

—भज गोविंदम, भज गोविंदम, गोविंदम भज गोविंदम ॥

भज कृष्ण कन्हैया गोविंदम

भज धेनु चरैया गोविंदम ।

भज वंशी बजैया गोविंदम—

—भज गोविंदम, भज गोविंदम, गोविंदम भज गोविंदम ॥

(६२)

सद्गुरु की आरति

ॐ जय गुरुदेव गोसाँई,
 प्रभु सद्गुरु देव गोसाँई ।
 महामंत्र का दान दियो है,
 जय गुरुदेव गोसाँई ॥

धरती पर तुमने आकर,
 निर्मल करुणा बरसाई ।
 प्रेममूर्ति श्री विजयकृष्ण ने,
 प्रेम की राह दिखलाई ॥

ऋभु तुम ही हो, कपिल तुमही हो
 दत्तात्रेय गोसाँई, (प्रभु तुम) ।
 दिव्य पुरुष परमेश्वर तुमने
 लीला गुप्त रचाई ॥

तुम हो आदि, अनादि, युग युग
 तुम अन्तरमायी, (प्रभु) ।
 तुम अवतार सद्गुरु के प्रभु
 तुम मेरे स्वामी ॥

जय वंदन बारम्बार, प्रभु तुम्हें
 वन्दन बारम्बार ।
 पूराण पुरुष, उस दिव्य पुरुष के
 श्री चरणों में प्रणाम ॥

(६३)

राग—भीमपलश्री

अव नाम सुमिर लो प्यारे, श्वासों की पूँजी बीत रही ॥ टेक ॥
 अव सन्ध्या होने वाली है, जीवन की ज्योति बीत रही ।
 अव नाम सुमिर लो प्यारे, जीवन की घड़ियाँ बीत रही ॥
 कुछ हाथ न तेरे आएगा, जो श्वाँस तेरा बीत जाएगा ।
 श्री गुरु शरण तुम लो प्यारे, जीवन की नैया डूब रही ॥

(६४)

हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः
 यादवाय माधवाय केशवाय नमः ॥
 गोपाल गोविंद राम श्री मधुसूदन,
 गिरिधारी गोपीनाथ मदन मोहन ।
 श्री चैतन्य नित्यानंद अद्वैत सीता,
 हरि गुरु वैष्णव भागवत गीता ॥
 श्री रूप सनातन भट्ट रघुनाथ,
 श्री जीव गोपाल भट्ट दास रघुनाथ ।
 एइ छै गोसाँई कोरि चरण वंदन,
 जहा होइते विघ्ननाश अभिष्ट पूरन ॥
 एइ छै गोसाँई जार मैं तार दास,
 ता सबार पद रेणु मोर पंच ग्रास ।
 तादेर चरण सेवी भक्तसने वास,
 जनमे जनमे होय एइ अभिलास ॥

एइ छै गोसाई जबे वृजे करिलेन वास

राधाकृष्ण नित्यलीला करिलेन प्रकाश ॥

आचंदे बोलो हरि, भजो वृंदावन

श्रीगुरु वैष्णव पदे, मजाइया मन ॥

श्रीगुरु वैष्णव पाद पद्मकरि आस ।

नाम संकीर्तन करे नरोत्तम दास ॥

—॥ जय राधे राधे गोविंद जय जय ॥—

—॥ नितार्इ गौर हरि बोल, हरि बोल, हरि बोल ॥—

(६५)

श्री नाम संकीर्तन (संध्याकालीन)

- (१) यशोदानंदन व्रजबिहारी
गोविंद गोपाल कृष्ण मुरारी ।
- (२) हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे,
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
- (३) सीतापति सुंदर राजा राम,
भक्तजनाश्रय राघव राम ।
- (४) भजो श्री कृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानंद,
हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधे गोविंद ।
- (५) श्री राम जय राम जय जय राम ।
- (६) श्री कृष्ण गोविंद हरे मुरारे
हे नाथ नारायण वासुदेवाय ।
- (७) गोविंद जय जय, गोपाल जय जय ।
राधा रमण हरि, मुकुंद जय जय ॥

- (८) हरि हरि बोल, बोल हरि बोल ।
मुकुंद माधव गोविंद बोल ॥
- (९) जै जगन्नाथ सुभद्रा बलराम ।
केशव माधव दीन दयाल ॥
- (१०) भजो गुरु-गौरांग राधा-गोविंद ।
ब्रह्म-नारायण हरे कृष्ण राम ॥

(६६)

समाप्ति वंदना

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ॥

जय जय श्री कृष्ण चैतन्य
जय जय श्री नित्यानंद ।
जय जय श्री अद्वैतचंद्र
जय जय श्री गौर भक्तवृंद ॥

ॐ कृष्णाय वासुदेवाय, हरये परमात्मने ।
प्रणत क्लेशनाशाय, गोविंदाय नमो नमः ॥

ॐ जटिने दण्डिने नित्यं, लंबोदर शरीरिणे ।
कमंडलु निसंगाय, तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥

हरि ॐ हरि ॐ हरि ॐ
गुरु ॐ गुरु ॐ गुरु ॐ

(६७)

जय ध्वनि

- (१) श्री श्री नाम ब्रह्म देव की जय
- (२) श्री श्री राधा किसन जी की जय
- (३) श्री श्री वृंदा देवी की जय
- (४) श्री श्री चैतन्य महाप्रभु की जय
- (५) श्री श्री नित्यानंद प्रभु की जय
- (६) श्री श्री अद्वैत प्रभु की जय
- (७) श्री श्री परमहंस जी की जय
- (८) श्री श्री गोसाईं जी की जय
- (९) श्री श्री योगमाया देवी की जय
- (१०) श्री श्री दरवेश जी महाराज की जय
- (११) श्री श्री सरोजबाला देवी की जय
- (१२) श्री श्री गुरुजी महाराज की जय
- (१३) श्री श्री माता ठाकूरानी की जय
- (१४) श्री श्री वृंदावन धाम की जय
- (१५) श्री श्री चतुर्धाम की जय
- (१६) सब साधु-संतों की जय
- (१७) सब भक्त वृंदों की जय
- (१८) श्री श्री हरि नाम संकीर्तन की जय



सकृतज्ञ धन्यवाद

जिन ग्रंथों से सहाय्यता ली गई है—

- (१) श्रीमद्भागवत् पुराण
- (२) श्री नारद भक्ति सूत्र (बंगला)
- (३) श्रीमद्भगवद्गीता
- (४) श्री श्री चैतन्य चरितामृत (बंगला)
- (५) श्री श्री सद्गुरु-संग (बंगला) — ब्र. कुलदानंद
- (६) श्री श्री रामकृष्ण वचनामृत — श्री 'म'
- (७) श्री दरवेश दर्शन (बंगला) श्री दरवेशजी
- (८) प्रेमयोग — स्वामी विवेकानंद
- (९) अजपा साधन तत्व — स्वामी असीमानंद सरस्वती
- (१०) श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी की बंगला तथा हिंदी में प्रकाशित जीवनी तथा उपदेशों से।
- (११) श्री श्री सद्गुरु उपदेशामृत (बंगला) — मा-मनि।
- (१२) श्री श्री चैतन्य चरितावली (हिंदी)
- (१३) भारतेर साधक (बंगला)



-: पुस्तक प्राप्ति स्थान :-

- (१) श्री श्री विजयकृष्ण भक्त संघ
पो. खुनाथपुर, जि. पुरुलिया (प. बंगाल) पिन- ७२३१३३
- (२) श्री ए. के. मुखर्जी
२/१२६ बैरन बाजार, रायपुर (म.प्र.)
- (३) मे. पुस्तक प्रतिष्ठान
सत्ती बाजार, रायपुर (म.प्र.)
- (४) श्री हरिनारायण व्यास (अधिवक्ता)
२४, विवेकानंद नगर, रायपुर (म.प्र.) फोन : ४२३६२७
- (५) श्री दाऊलाल पुरोहित
४७, विवेकानंद नगर, रायपुर (म.प्र.) फोन : ४२३८६३
- (६) श्री निर्मल कुमार गुप्ता
६८, एकबालपुर रोड, कलकत्ता- ७०००५८ (प. बंगाल)
- (७) श्री हरिशंकर सिंघानिया
३०६, बी.बी. गांगुली स्ट्रीट, दूसरा तल्ला,
कलकत्ता- ७०००१२ (प. बंगाल), फोन : २६-७०२६, २६-३०५७
- (८) श्री सांवरमल दारुका
जयंती टेक्सटाईल्स, डी-३ बाम्बे वाला हाता
८१/८४, धनकुट्टी, कानपुर-२०८००१ फोन : ३६१७४३, ३१७५८८
- (९) श्री प्रवीर अधिकारी
अधिकारी ब्रदर्स, पो. कटिहार, जिला कटिहार, बिहार, फोन : ३३२५७

श्री श्री विजयकृष्ण भक्त संघ द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

- | | |
|--|----------|
| (१) साधना पथ (हिंदी) | २०/- रु. |
| (२) साधना पथ (बंगला) | १५/- रु. |
| (३) श्री श्री विजय कृष्ण परिजन (बंगला) | |
| प्रथम खण्ड | ५५/- रु. |
| द्वितीय खण्ड | ५५/- रु. |
| तृतीय खण्ड | ६५/- रु. |
| चतुर्थ खण्ड | ४०/- रु. |
| पंचम खण्ड | ४०/- रु. |
| (४) सद्गुरु श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी | |
| जीवन चरित, उपदेश, प्रवचन (हिंदी) – प्रकाशनाधीन | |

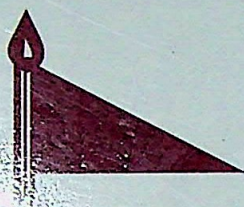
-: पुस्तक प्राप्ति स्थान :-

- (१) श्री श्री विजयकृष्ण भक्त संघ.
 पो. रघुनाथपुर - ७२३१३३, जि. पुरुलिया (प. बंगाल)
- (२) श्री अशोक पुरोहित
 ४७, विवेकानंद नगर, पो. रायपुर (म.प्र.), पिन- ४६२००९
 फोन : ४२३८६३





ॐ श्रीकृष्णचैतन्याय नमः



सद्गुरु श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी
पदेश

१. ऐसा दिन आए रहेगा।
२. आत्मप्रशंसा मत करो।
३. परनिन्दा मत करो।
४. अहिंसा परमो धर्मः।
५. सब प्राणियों पर दया करो।
६. शास्त्र एवं महात्माओं पर विश्वास रखो।
७. शास्त्र एवं महात्माओं के आचरण से
जो मेल न खाये उसे विषवत् त्याग दो।
८. नाहंकरात् परो रिपुः।

श्री श्री विजयकृष्ण भक्त संघ
स्टेशन रोड, पो० रघुनाथपुर
जिला - पुरुलिया (पश्चिम बंगाल)
पिन कोड - 723133